चमड़ा वस्त्र उद्योग
और
कारीगरों की जिन्दगी

दिल्ली की कहानी

पीपल्स यूनियन फॉर डैमोक्रेटिक राइट्स, दिल्ली
नवम्बर 2004

विषय सूची

	संदर्भ	
I.	**ब्राण्ड, निर्यातक और निर्माता**	**2**
	विभिन्न वस्त्रों की पीस दर और चमड़ा कारीगरों की औसत आय	3
II.	**चमड़ा कारीगर : ज़िंदगियाँ और काम**	**4**
	- कारीगर और काम की प्रक्रिया	4
	- काम की जगहें और हालात	4
	- पीस दर मेहनताना, कोई सुविधाएं नहीं	5
	- कारीगरों की पृष्ठभूमि और रहन सहन	8
	पीस दर की अर्थव्यवस्था	*6-7*
	एक कारीगर की ज़िंदगी	*9*
III.	**मजदूरों का संघर्ष**	**10**
	- शुरूआती दौर	10
	- समझौते की शुरूआती शर्तें	11
	- यूनियन का ढांचा	11
	- बायकॉट और तालाबंदी	11
	- मांगों में विस्तार	12
	- बोनस के लिए संघर्ष	12
	- वेतन बोर्ड बनवाने का संघर्ष	13
	- पीस दर का संघर्ष : पुलिस की मिली भगत	13
	एक असम्मिलित इकाई	*14*
IV.	**निष्कर्ष**	**16**

दिल्ली के गोविंदपुरी - तुगलकाबाद एक्सटेंशन क्षेत्रों में चमड़ा वस्त्र के निर्यातकों के लिए पीस दर पर काम कर रहे चमड़ा कारीगरों ने 1999 में अपने को दिल्ली लेदर कारीगर संगठन (डी.एल.के.एस.) के नाम से संगठित किया। जब सन् 2002 और 2003 में पीस दर पहले के मुकाबले 30 प्रतिशत तक गिर गयी तो डी.एल.के.एस. ने अपने कारीगरों को पुरानी दर वापस लागू करने की मांग रखने के लिए प्रेरित किया। जुलाई 2003 में निर्यातकों के साथ हुए समझौते में पीस दर को 10 प्रतिशत वापस बढ़ाने पर सहमति हुई। परन्तु तीन सबसे बड़े निर्यातकों ने इस समझौते को लागू करने से इनकार कर दिया। इससे उत्पन्न झगड़े का निपटारा श्रम विभाग ने नहीं बल्कि पुलिस के सहायक कमिश्नर (कालका जी) ने किया। ऐसा उन्होंने डी.एल.के.एस. द्वारा 19 जुलाई 2003 को आयोजित सार्वजनिक सभा पर जबर्दस्ती रोक लगा कर, निर्यातकों के साथ समझौते के लिए हो रही बैठक की अध्यक्षता करके, यूनियन के पदाधिकारियों को गंभीर परिणामों की धमकी देकर और निर्यातकों को अपनी इकाइयों को अपनी मर्जी के मुताबिक चलाने में पुलिस की पूरी मदद का आश्वासन देकर किया। इस "समझौते" का लागू किया जाना सुनिश्चित करने के लिए उन्होंने फैक्टरी के गेट पर पुलिस तैनात कर दी।

जब स्थानीय पुलिस ने डी.एल.के.एस. को ओखला के नज़दीक जिला पार्क में 5 अगस्त 2003 को अपनी बैठक करने से रोका, तो उन्होंने पी.यू.डी.आर. से संपर्क किया। यह बैठक पीस दर के मुद्दे पर संघर्ष में उस समय की स्थिति पर चर्चा के लिए आयोजित की जा रही थी। पी.यू.डी.आर. ने स्थानीय पुलिस को चिट्ठी लिखी जिसमें कहा गया था कि मजदूरों को अपनी समस्याओं के बारे में बात करने और जनवादी तरीके से फैसला लेने के लिए सभा करने का पूरा हक है। 5 अगस्त 2003 की सुबह पुलिस ने डी.एल.के.एस. को बताया कि उन्हें पार्क में बैठक करने की अनुमति नहीं दी गई है। इस बैठक को रोक कर पुलिस ने चमड़ा कारीगरों को अपनी समस्याओं के बारे में मिल कर सोचने और जनवादी ढंग से कोई निर्णय लेने के अधिकार से वंचित कर दिया। किसी दूसरी जगह बैठक करने के लिए व्यवस्था की जा सके इससे पहले ही पुलिस ने अध्यक्ष और सचिव समेत डी.एल.के.एस. के 9 पदाधिकारियों को पकड़ लिया। इसके बाद 700 से ज़्यादा कारीगरों द्वारा गोविंदपुरी थाने पर विरोध प्रदर्शन के चलते इन लोगों को छोड़ दिया गया। यह घटना यूनियनों की कार्यवाही को कानून और व्यवस्था का मुद्दा बना देने की राज्य की बढ़ती प्रवृति का एक उदाहरण है। इसी प्रवृति के चलते राज्य द्वारा इन मुद्दों को श्रम विभाग की जगह कानून और व्यवस्था की मशीनरी द्वारा संभाला जाता है।

चमड़ा उद्योग भारत में आठ सबसे अधिक निर्यात आमदनी हासिल करने वाले क्षेत्रों में से एक है। इसके वार्षिक उत्पादन का मूल्य 40 खरब अमरीकी डॉलर और वार्षिक निर्यात 20 खरब अमरीकी डॉलर है। काउनसिल फॉर लेदर एक्सपोर्टस, जो कि भारतीय चमड़ा निर्यातकों और अंतर्राष्ट्रीय खरीदारों के बीच सेतू का काम करती है, का दावा है कि वह 'आधुनिक, पारदर्शी और सबसे अच्छी औद्योगिक कार्यप्रणाली के ज़रिये वैश्वीय बाज़ार में भारतीय चमड़ा उद्योग के विकास के लिए प्रतिबद्ध' है। काउनसिल 'कामगारों के लिए पूरी व्यावसायिक सुरक्षा और काम के अच्छे हालात' का वादा भी करता है। परन्तु दिल्ली के चमड़ा वस्त्र उद्योग के कामगारों के वास्तिविक हालात चौंका देने वाली एक अलग तस्वीर उभारते हैं - यहाँ रोज़गार की बढ़ती असुरक्षा, गिरती आमदनी, नौकरी के रिकॉर्ड की अनुपस्थिति, बोनस और भविष्य निधि (प्रोविडेंड फंड) का न दिया जाना, श्रम विभाग के निरीक्षण का अभाव, काम के असुरक्षित, अस्वास्थ्यकर व हानीकारक हालात और निर्यातकों द्वारा कामगारों की मांगों को कुचलने के लिए पुलिस से सहायता लेने की बढ़ती प्रवृति व्याप्त है।

इस संदर्भ में पी.यू.डी.आर. को दिल्ली के चमड़ा वस्त्र उद्योग के काम के हालातों और कारीगरों के संघर्ष के बारे में जांच की ज़रूरत महसूस हुई। जांच दल ने नौ चमड़ा वस्त्र इकाइयों के काम के हालातों का विस्तृत सर्वेक्षण किया। इसके अलावा जांच दल संगम विहार में कारीगरों के घर गया, डी.एल.के.एस. के पदाधिकारियों से मिला और साथ ही चमड़ा वस्त्र उद्योग के निर्यातकों से मिला।

इस रपट में चमड़ा वस्त्र उद्योग के ढांचे और कार्यप्रणाली को समझने की कोशिश की गई है जो कामगारों को न्यूनतम स्तर पर जीवन निर्वाह करने पर मजबूर कर रहे हैं। साथ ही इस रपट में राज्य की मशीनरी (खासकर श्रम विभाग और पुलिस) की भूमिका समझने की कोशिश की गई है जो कि इसमें मदद कर रही है। रपट में चमड़ा उद्योग के कामगारों के संघर्ष, यूनियन द्वारा उठाए गए मुद्दों, उसकी उपलब्धियों और कठिनाइयों का विवरण भी दिया गया है। हमारी जांच न केवल यह दर्शाती है कि किस तरह कामगारों को सबसे बुनियादी जनवादी अधिकारों से निहायत स्पष्ट और व्यवस्थित तरीकों से वंचित किया जा रहा है बल्कि यह भी कि जब ये कामगार संगठित होने और अपने हकों के लिए एकजुट होकर संघर्ष करने की कोशिश करते हैं तो राज्य के विभिन्न अंग किस तरह से उन पर दमन का कहर ढाते हैं।

1. ब्राण्ड, निर्यातक और निर्माता

संसार के 650 खरब डालर के चमड़ा और चमड़ा वस्त्र के व्यापार में भारत का हिस्सा 2.4 प्रतिशत है। चमड़े से बनने वाली मुख्य वस्तुएं हैं चप्पल, जूते, वस्त्र और अन्य सामान जैसे हाथ के बैग, पर्स, बैल्ट, दस्ताने, खेल का सामान, हारनेस और जीनसाजी आदि। भारत के चमड़े और चमड़े के सामान के कुल निर्यात का एक चौथाई हिस्सा चमड़े के वस्त्रों का है। भारत द्वारा निर्यात किए गए चमड़े के ज़्यादातर वस्त्र जर्मनी, अमरीका, इटली, ब्रिटेन, स्पेन और फ्रांस के बाज़ारों में पहुँचते हैं। सन् 1995-96 और 2000-01 में बीच चमड़े के वस्त्रों का निर्यात हर साल 9 प्रतिशत बढ़ कर 2104 करोड़ रुपये सालाना तक पहुँच गया। पर उसके बाद 2001-02 में भारत का निर्यात घट कर 1806 करोड़ रुपये और सन् 2002-03 में घट कर 1269 करोड़ रुपये हो गया। 2003-04 में यह थोड़ा-सा यानी करीब 6 प्रतिशत बढ़ा।

चमड़ा क्षेत्र और चमड़े के वस्त्रों के निर्यात में विकास की बेहतरीन सम्भावनाएं देखी जा रही हैं। चमड़े के वस्त्रों के उत्पादन का तरीका श्रम प्रधान होने की वजह से उत्पादन बढ़ने के साथ साथ रोजगार में तेज़ वृद्धि होती है। उत्पादन के बाद वस्त्र का मूल्य, कच्चेमाल से पांच गुना ज़्यादा हो जाता है अर्थात चमड़ा वस्त्र उत्पादन से काफी आय उत्पन्न होती है। यही कारण है कि चमड़े के सामान के उत्पादन और निर्यात को बहुत ही व्यवस्थित रूप से बढ़ावा दिया जाता है। सरकार ने पिछले एक दशक पूर्व विदेशी मुद्रा कोष बढ़ाने के उद्देश्य से निर्यात करने वाली इकाइयों को करों में रियायतें दे कर प्रोत्साहन दिया है।

औद्योगिक देशों में चमड़े के वस्त्रों के क्षेत्र में गहन स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता के चलते इन देशों ने वस्त्रों को तैयार करने का काम तीसरी दुनिया के देशों को ऑउटसोर्स करना (दूसरे देशों से ठेके पर उत्पादन करवाना) शुरू कर दिया जहाँ पर मजदूरी कम है और श्रम कानून अधिक ढीले हैं। तीसरी दुनिया के इन देशों में या तो श्रम कानूनों का पालन ही नहीं किया जाता या फिर मजदूरों के हित को अनदेखा कर के निर्यात में प्रगति लाने के लिए कानूनों में बदलाव कर दिया जाता है।

उत्पादन की लागत कम करने और लाभ बढ़ाने के इरादे से उत्पादन को कम मजदूरी वाले क्षेत्रों की ओर धकेलने की कोशिशें लगातार चल रही हैं। इसके अलावा बड़ी कम्पनियों की उत्पादन के काम में अपनी सीधी भागीदारी कम करते जाने की कोशिश भी रही है। उत्पादन करने का मतलब है फैक्टरियों को चलाना जिसमें मशीनों की कीमत और उनके रखरखाव का खर्चा, मजदूरी और उनपर निगरानी का खर्चा उठाना पड़ता है और साथ में अनिश्चितता भी झेलनी पड़ती है। इसके बदले अगर उत्पादन का काम ठेके पर दे दिया जाए तो बिल्कुल भी पूँजी नहीं लगानी पड़ती और लाभ में केवल मामूली ही कमी आती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि प्रत्येक बड़ी कम्पनी सामान को खास ब्राण्ड के नाम से ऊंची कीमत पर बेचती है, और इसलिए अपने विशालकाय स्रोतों को सामान की पैकिंग, विज्ञापन, बाज़ार आश्वस्त कराने और अपने ब्राण्ड की छवि बनाने पर केन्द्रित करती हैं। इस सब से वे अपने ब्राण्ड के लिए अधिक कीमत और सामान्य से कहीं अधिक लाभ दर सुनिश्चित कर लेती हैं। इस लिए बड़ी कम्पनियाँ या तो मजदूरों की संख्या घटा रही हैं या फिर उत्पादन के काम को पूरी तरह से कम मज़दूरी दर वाली अर्थव्यवस्थाओं या देश के अंदर कम मजदूरी वाले इलाकों की ओर धकेल रही हैं। इस तरह उत्पादन के काम को ठेके पर दिए जाने में नाटकीय रूप से बढ़ोतरी हुई है और मुख्य कम्पनी के लिए आसानी से उत्पादनकर्ता बदल पाने की संभावनाएं भी बढ़ी हैं। चमड़े के वस्त्रों के उद्योग में भी ऐसा ही हुआ है।

भारत के चमड़े के वस्त्रों के निर्यातक (एक्सपोर्टर) वैश्वीय आपूर्ति की श्रंखला के हिस्से हैं, जो कि अंतर्राष्ट्रीय ब्राण्ड और उनको चलाने वाली बड़ी कम्पनियों जैसे जी.ए.पी., एम.एण्ड.एस. वाल-मार्ट, आरमनी, केलविन क्लेइन आदि के लिए खास तरह के माल की आपूर्ति करते हैं। भारतीय निर्यातकों को अपने ऑर्डर अंतर्राष्ट्रीय खरीदारों (बाइंग हाउस) से मिलते हैं जो ब्राण्ड वाली कम्पनियों और निर्यातकों के बीच बिचौलियों का काम करते हैं। ये खरीदार किसी एक ब्राण्ड की मिल्कियत में हो सकते हैं या फिर स्वतंत्र खरीद ऑफिस, स्वतंत्र एजेंट या व्यापारी जो अलग अलग व्यापारियों को माल दिलवाते हैं। उनके मुख्य काम हैं बड़ी कम्पनियों और निर्यातकों के बीच संवाद स्थापित करना, नए निर्यातक खोजना जो इन कम्पनियों की ज़रूरत का माल दिलवा सके और माल की गुणवत्ता सुनिश्चित करना। खरीदार निर्यातक को एक वस्त्र के डिज़ाइन, अन्य ज़रूरतें और उसकी कीमत बताता है। ज़्यादातर मामलों में खरीदार कच्चे माल की आपूर्ति भी करता है। निर्यातक वस्त्र का एक नमूना वापस खरीदार को भेजता है और साथ ही कीमत का मोल भाव भी करता है। जब ब्राण्ड वाली बड़ी कम्पनी की डिज़ाइन टीम, कीमत, समय, गुणवत्ता और मात्रा को लेकर निर्यातक से सहमत हो जाती है तभी उस वस्त्र का ऑर्डर दिया जाता है।

चमड़े के वस्त्रों के निर्यातक फिर उत्पादन का काम फैब्रिकेटरों (निर्माण इकाइयों) को ठेके पर दे देते हैं। इस तरह से फैब्रिकेटर इकाइयाँ उपआपूर्तक हैं जो कि आपूर्तकों यानी कि निर्यातकों तक तैयार वस्त्र पहुँचाती हैं। दिल्ली में 95 प्रतिशत से अधिक चमड़े के वस्त्र फैब्रिकेटर इकाइयों में बनते हैं। दूसरी तरफ निर्यातकों का वार्षिक व्यक्तिगत कुल क्रय-विक्रय (टर्नओवर) 7 लाख से लेकर 250 करोड़ रुपये तक है। कुछ निर्यातकों के विशालकाय टर्नओवर से इनके आकार के बारे में धोखा हो सकता है क्योंकि निर्यातकों की उत्पादन व्यवस्थाएं बहुत ही सीमित हैं और वे उत्पादन का काम आगे ठेके पर देना अधिक पसंद करते हैं। कुछ बड़े निर्यातकों के पास अपनी उत्पादन की कार्यशालाएं हैं जिनमें आधुनिकतम मशीनें

लगी हैं, पर यह सब सिर्फ खरीदारों को संतुष्ट करने के लिए बनाया हुआ मुखौटा है जो कि माल का ऑर्डर तभी देते हैं जब वे उत्पादन की व्यवस्थाओं से संतुष्ट हों और उन्हें माल की गुणवत्ता के बारे में आश्वासन मिल जाए। हमारा जांच दल चमड़े के वस्त्रों के 11 निर्यातकों से मिला जो कि पिछले एक से दो दशकों से इस काम में लगे हैं और जिनका वार्षिक टर्नओवर 5 से 15 करोड़ रुपये के बीच है। इन निर्यातकों के पास उनकी अपनी इकाइयों में 50 से 300 मशीनें हैं परन्तु इनमें से कोई भी 100 प्रतिशत उत्पादन अपनी इकाइयों में नहीं करता। इनमें से तीन निर्यातक आर्डर में से 75 प्रतिशत का, दो में 25 से 50 प्रतिशत का और एक में निर्यातक 51 से 75 प्रतिशत का उत्पादन फैब्रिकेटर को सौंप देते हैं। बाकी के पाँच निर्यातक पूरी तरह से फैब्रिकेटरों पर ही निर्भर रहते हैं।

ज़्यादातर फैब्रिकेटर इकाइयाँ निर्यातकों द्वारा लगाई जाती हैं। इस तरह से निर्यातक ही प्रमुख नियोक्ता (एम्पलोयर) होता है - वही कारीगरों को दिए जाने के लिए पैसा भेजता है, मशीनें भी उसी की होती हैं, वह इकाइयों का किराया देता है, उत्पादन के काम की निगरानी और गुणवत्ता नियंत्रण के लिए सुपरवाइज़र भी नियुक्त करता है और फैब्रिकेटर को निश्चित वेतन भी देता है। बड़े निर्यातक एक से अधिक इकाइयाँ लगा लेते हैं जिससे कि एक इकाई में बहुत सारे कारीगर इकट्ठे न हो जाएं और इस तरह वे मजदूरों के संगठित होने की संभावना और अपनी मज़दूरी को लेकर मोल भाव कर पाने की क्षमता को कम कर पाते हैं। इसके अलावा ऐसा करने से निर्यातक को यह सुविधा रहती है कि जब मुश्किल समय हो तो वह उत्पादन रोक सकता है और उत्पादन का काम एक जगह से दूसरी जगह पर ले जा सकता है। इन दोनों स्थितियों में निर्यातक काम के ठीक हालात सुनिश्चित करने की ज़िम्मेदारी से भी बच जाता है। मजदूरों को अक्सर इस व्यवस्था का पता ही नहीं चल पाता क्योंकि उनका वास्ता केवल फैब्रिकेटर से होता है। निर्यातकों की मिल्कियत वाली फैब्रिकेटरों के अलावा कुछ स्वतंत्र इकाइयाँ भी हैं जिन्हें या तो कुछ खास निर्यातकों से ठेके मिलते हैं या कुछ अन्य छोटे फैब्रिकेटर जो अलग अलग निर्यातकों के पास ऑर्डर लेने जाते हैं। आमतौर पर 5 करोड़ सालाना टर्नओवर वाला निर्यातक औसतन 15 फैब्रिकेटरों के साथ काम करता है।

फैब्रिकेटर इकाइयों में मजदूर आमतौर पर अनियमित तौर पर या ठेके पर काम करते हैं। जब फैब्रिकेटरों को निर्यातक से ऑर्डर मिलता है तब पीस दर के हिसाब से उसकी मजदूरी का सौदा भी होता है। यह निर्यातकों की निजी इकाइयों से अलग है जहाँ मजदूर स्थाई रूप से काम करते हैं और उन्हें नियमित मजदूरी मिलती है।

पीस की दर वस्त्र के प्रकार, उसके डिज़ाइन और उसके बनने में लगने वाले कामों पर निर्भर करती है। निर्यातक खुद ही अपने द्वारा लगाई फैब्रिकेटर निर्माण इकाइयों में पीस की दर तय करते हैं। स्वतंत्र फैब्रिकेटर इकाइयों में निर्यातक फैब्रिकेटरों के साथ पीस दर के बारे में सौदा करते हैं। निर्यातक क्योंकि कई फैब्रिकेटरों से संबंध रखते हैं इसलिए पीस दर के बारे में सौदा करने की ताकत निर्यातक के पास रहती है और वे पीस दर को कम रख पाते हैं।

तालिका 1 में दिल्ली के चमड़ा वस्त्र उद्योग के विभिन्न वस्त्रों की पीस दर और मजदूरों की औसत मासिक आमदनी दिखाई गई है। ये दरें हमारे जांच दल को बहुत से मजदूरों से बातचीत के ज़रिये पता चलीं।

इसलिए चमड़ा वस्त्र उद्योग का एक कारीगर, जो कुशल कारीगर की श्रेणी में आता है, महीने में औसतन 2500 रुपये या फिर 84 रुपये प्रतिदिन कमा पाता है। यह आमदनी दिल्ली में अकुशल मजदूरों के लिए नियत न्यूनतम मजदूरी, 107.4 रुपये प्रतिदिन, से भी कम है।

चमड़ा वस्त्र उद्योग में आपूर्ति की श्रृंखला का पूरा ढांचा कुछ इस तरह का है कि इस में निहित सभी अनिश्चितताएं श्रृंखला के सबसे निचले दर्जे की कड़ी यानी कि कारीगरों को झेलनी पड़ती हैं। यानी कि उन्हीं के हिस्से में जिनकी ऊपर से किसी भी दबाव का विरोध कर पाने की ताकत सबसे कम होती है। कारीगरों को मेहनताना फैब्रिकेटर देता है परन्तु पीस दर के ऊपर फैब्रिकेटर का नियंत्रण भी न के बराबरे है। निर्यातक अंतर्राष्ट्रीय खरीदारों से बड़े बड़े ऑर्डर ले पाते हैं और बहुत सा लाभ कमा पाते हैं क्योंकि वे उत्पादन का काम कई एक फैब्रिकेटरों में बांट देते हैं। इसी ढांचे के चलते निर्यातक मजदूरों के प्रति हर तरह की ज़िम्मेवारी से बच

तालिका 1 - अलग अलग वस्त्रों के लिए पीस दर और चमड़ा वस्त्र उद्योग में कारीगरों की औसत आय

वस्त्र	पीस दर(रु)	औसत पीस दर	प्रतिदिन वस्त्र उत्पादन	औसत प्रतिदिन आय	प्रति माह औसत आय
1/4 स्कर्ट	50-55	52.5	4.5	236.25	2,362.5
1/2 स्कर्ट	65-85	75.0	3.5	262.50	2625.0
पूरी स्कर्ट	**90-125**	**107.5**	**2.5**	**268.75**	**2,687.5**
जैकेट	115-135	125.0	2.5	321.50	3,125.0
वेस्ट कोट	55-75	65.0	4.0	260.00	2,600.0
लंबा कोट	240-260	250.0	1.0	250.00	2,500.0
पैंट	90-125	107.5	2.0	215.00	2,150.0
कमीज़	90-120	105.0	2.0	210.00	2,100.0
औसत				251.88	2,518.75

नोट : औसत आय की गणना इस आधार पर की गई है कि मजदूरों को महीने में करीब 10 दिन काम मिलता है।

पाते हैं। इसके अलावा पीस दर का स्तर कम रख कर वे अपना लाभ और अधिक बढ़ा लेते हैं। अधिकांश मजदूरों को गुज़ारे के न्यूनतम स्तर पर थकेल कर धन इकट्ठा करने का तरीका गैर लोकतांत्रिक है। सिर्फ निरंकुश सत्ता ही इस प्रकार की आर्थिक असमानताओं को बढ़ावा दे सकती है। यही कारण है कि मजदूरों के प्रतिरोध का जवाब निर्यातक और राजसत्ता दमन द्वारा देते हैं।

2. चमड़ा कारीगर : ज़िंदगियाँ और काम

दिल्ली, नोएडा, गुड़गाँव और फरीदाबाद में चमड़ा वस्त्र उद्योग में काम कर रहे कारीगरों की गैर-अधिकारिक संख्या सवा लाख है। चमड़े के वस्त्र सिलने का काम एक निहायत कुशलता का काम है जिसमें बहुत ही अधिक एकाग्रता और विशेषज्ञता की ज़रूरत होती है। चमड़े पर एक बार सिलाई कर दी जाए तो उसे उधेड़ा नहीं जा सकता, इसलिए चमड़े की सिलाई केवल एक कुशल दर्जी कर सकता है। इस काम में लगे कारीगर मानते हैं कि उनका काम कुशल मजदूरों के काम से भी ऊँचे दर्जे के कौशल का है और वे खुद को 'सुपर स्किल्ड' कहते हैं। इस क्षेत्र में काम कर रहे कारीगरों में अपने हुनर को लेकर बहुत गहरा गर्वभाव है। उनका स्वाभिमान उनके काम से जुड़ा हुआ है। उनके रहने और काम करने के हालातों के बिगड़ने से उन्हें जो स्पष्ट नुकसान हुए हैं उसके अलावा उनकी जिंदगी के इस अहम हिस्से को भी गहरी अप्रकट चोट पहुँची है।

कारीगर और काम की प्रक्रिया

दिल्ली शहर और आसपास के इलाकों जैसे नोएडा, पटपड़गंज, गोविंदपुरी, खानपुर, तुगलकाबाद, लाडो सराय, जनकपुरी और नारायणा में फैले हुए ये कारीगर छोटी छोटी चमड़ा वस्त्र फैब्रिकेटर इकाइयों में काम करते हैं। आमतौर पर एक सुपरवाइज़र नियुक्त कर दिया जाता है जो कि कभी उसी का निकट का संबंधी होता है और जिसे तयशुदा वेतन मिलता है। यह सुपरवाइज़र निर्यातक से चमड़े के वस्त्र के कटे हुए हिस्से ला कर कारीगरों को देता है और इकाई में काम की निगरानी करता है। निर्यातक द्वारा फैब्रिकेटर को आधुनिकतम फैशन के वस्त्र की ज़रूरत के अनुसार तैयार, रंगे हुए, सही डिज़ाइन वाले और कटे हुए चमड़े के टुकड़े दिए जाते हैं। फैब्रिकेटर निर्यातक को न्यूनतम पीस दर पर जल्दी से जल्दी तैयार वस्त्र पहुँचाने की गारंटी देता है। फैब्रिकेटर इकाइयों में कारीगर 'मास्टर' दर्जी के निर्देशों के अनुसार ये वस्त्र सिलते हैं। ख़ासकर जब कोई नई तरह का वस्त्र तैयार किया जाना होता है तो इन निर्देशों की ज़रूरत होती है। 'मास्टर' को मासिक वेतन मिलता है। एक फैब्रिकेटर इकाई में औसतन 20 से 30 कारीगर काम करते हैं - इनमें से ज़्यादातर सिलाई का काम करते हैं पर कुछ एक (2 से 4), जो कि 'पेस्टर' कहलाते हैं, सिलाई से पहले चमड़े के टुकड़ों को चिपकाने का काम करते हैं। कारीगरों को ब्राण्ड के लेबल भी वस्त्रों के साथ में सिलने के लिए दिए जाते हैं, जो आमतौर पर बड़ी बड़ी कंपनियों के होते हैं। तैयार वस्त्र सुपरवाइज़र या फैब्रिकेटर द्वारा वापस निर्यातक तक पहुँचा दिए जाते हैं जो आगे विदेशी खरीदारों तक ये माल पहुँचाते हैं।

काम की जगहें और हालात

एक सामान्य फैब्रिकेटर इकाई किसी इमारत में किराए पर लिया गया एक अंधेरा गंदा कमरा होती है जिसमें 20 से 30 पैरों वाली बिजली से चलने वाली सिलाई की मशीनें होती हैं जिन्हें उतने की कारीगर चला रहे होते हैं। ये अत्यंत पुरानी मशीनें कतारों में लगी होती हैं और इन कतारों के बीच एक कदम से भी कम की दूरी होती है। मशीन के साथ एक छोटी सी मोटर जुड़ी रहती है। ये मोटर लंबी, उलझी हुई बिजली की तारों द्वारा बिजली के पांइट से जुड़ी रहती हैं। कारीगरों को वस्त्र सिलते समय उसके हिस्सों को जोड़ने के लिए बार बार एक ज्वलनशील रसायन का इस्तेमाल करना पड़ता है। यह रसायन मशीन की प्लाइवुड वाली सतह पर छोटे छोटे प्लास्टिक के बर्तनों में मोटर के एकदम पास रखा रहता है। यह व्यवस्था काफी खतरनाक है क्योंकि मोटर में से ज़रा सी चिंगारी निकलने पर यह रसायन आग पकड़ सकता है। ज़मीन आदि पर हर जगह चमड़े के टुकड़े, कतरनें आदि बिखरे रहते हैं। इन फैब्रिकेटर इकाइयों में सुरक्षा के इंतज़ाम बिल्कुल ही नहीं हैं। यहां होने वाली सबसे आम दुर्घटनाएं आग लगने की होती हैं मशीन की मोटर से निकलने वाली चिंगारी से पास ही में रखा ज्वलनशील पदार्थ आग पकड़ लेता है। इस तरह की आग लगभग हर फैब्रिकेटर इकाई में कुछ महीनों में लगती रहती है। कुछ समय पहले गोविंदपुरी स्थित 'खुराना लैदर्स' में इसी तरह की एक दुर्घटना में एक कारीगर फ़ैजुल हक के हाथ, पैर और चेहरा जल गया था। अन्य कारीगरों की कोशिशों से आग बुझ गई। फैब्रिकेटर उन्हें सरकारी अस्पताल ले गया और इलाज के लिए 100 रुपये दिए। फ़ैजुल चोटों के कारण अगले 6 महीनों तक काम नहीं कर पाए। उन्हें अपने गाँव वापस जाना पड़ा और इलाज पर 3000 से 4000 रुपये लगाने पड़े। ऐसी घटनाओं के बावजूद फैब्रिकेटर इकाइयों में सुरक्षा के कोई उपाय मौजूद नहीं हैं। टीम जितनी भी फैब्रिकेटर इकाइयों में गई उनमें से एक में भी आग बुझाने वाले संयंत्र काम करने लायक हालत में नहीं थे।

ज़्यादातर इकाइयों में कमरों में रोशनी और हवा पहुँचाने के लिए कुछ ट्यूबलाइटें और एक खिड़की है। कुछ इकाइयों में पंखे भी हैं। कुछ इकाइयाँ बेसमेंट में भी हैं जिनमें हवा और रोशनी के लिए केवल एक रोशनदान मौजूद है जिसके कारण ये इकाइयाँ बहुत ही घुटन वाली हैं। शौचालय के नाम पर लगभग एक अलमारी जितनी एक गंदी जगह है जिसका इस्तेमाल अकसर इन कारीगरों के अलावा उसी इमारत में मौजूद अन्य चमड़ा और सूती वस्त्र इकाई के कारीगर भी करते हैं। पीने के पानी एक ऐसी टंकी

से आता है, जिसकी सफ़ाई बहुत ही कम होती है और कई बार इस टंकी में मरे हुए कीड़े भी तैर रहे होते हैं। इन इकाइयों में घुसने पर सबसे ज़्यादा ध्यान जिस ओर जाता है वह है गज़ब का शोर इतनी सारी मशीनों के एक साथ चलने से इतना ज़्यादा शोर होता है कि बात तक कर पाना संभव नहीं होता।

लगातार मशीनों के इस शोर में बैठने का असर यह होता है कि हर इकाई में कम से कम कुछ कारीगर तो कुछ सालों में ऊँचा सुनने लगते हैं। लगातार पूरी एकाग्रता से सिलाई का काम करते रहने से कुछ कारीगरों की आँखों की रोशनी पर भी बुरा असर पड़ता है। कारीगर यह भी बताते हैं कि उन्हें अकसर ऐसे चमड़े के कपड़े बनाने होते हैं जिनमें अंदर सिंथेटिक मेटीरियल भरना होता है। यह सिंथेटिक मेटीरियल उनकी नाक और गले में क्षोभ पैदा करता है और इसलिए बहुत से कारीगर तपेदिक (टी.बी.) का शिकार हो जाते हैं। लेकिन बातचीत के दौरान बहुत ही कम कारीगरों ने यह माना कि उन्हें स्वास्थ्य की कोई भी समस्या है। इसका कारण बहुत ही सीधा है। सार्वजनिक रूप से यह स्वीकारना, कि उन्हें स्वास्थ्य की कोई भी समस्या है, असल में यह स्वीकारने के बराबर है कि वे काम करने के लायक नहीं हैं। कारीगरों ने खुद माना कि इसी कारण से वे अपनी बीमारियों के बारे में कभी भी खुल कर बात नहीं करते। इसके अलावा ई.एस.आई. की सुविधाओं के अभाव में वे नियमित रूप से स्वास्थ्य की जांच के लिए डॉक्टर के पास भी नहीं जा पाते। इसका नतीजा यह होता है कि सालों तक यह कठोर काम करते रहने के बाद एक उम्र आने तक उनका स्वास्थ्य और शरीर पूरी तरह से जवाब दे देता है और उन्हें या तो खुद ही काम छोड़ना पड़ता है या फिर उन्हें निकाल दिया जाता है।

मशीनों के चलते रहने की आवाज़ से दिन के अंत तक कारीगर सुनने की अपनी क्षमता चाहे कुछ हद तक गंवा दें या अपनी आँखें कुछ और कमज़ोर कर लें, तो भी यह आवाज़ उनके लिए एक खुशी और स्वागत की आवाज़ है। ऐसा इसलिए क्योंकि काम में लगातार कमी आती जा रही है। कभी कभी कई दिनों और हफ्तों तक मशीनें चुप पड़ी रहती हैं। कारीगर फैब्रिकेटर इकाइयों में जाते हैं और वहाँ बेचैनी से आधे दिन तक इंतज़ार करते हैं कि काम का ऑर्डर आ जाए, वे काम कर पाएं और मजदूरी कमा सकें। उदाहरण के लिए जब हम खानपुर में एच.एस. फैशनस इकाई में गए तब कारीगरों को दो दिनों पहले ही काम मिला था और उससे पहले के 10 दिनों में उनके पास कोई काम नहीं था। फैब्रिकेटर भी मानते हैं कि उन्हें पूरे महीने ऑर्डर नहीं मिलते और पिछले आधे दशक में काम में गिरावट आई है। कारीगरों के लिए इसका अर्थ है उधारी के दुश्चक्र में फंस जाना। वे दूसरा कोई काम भी नहीं कर पाते क्योंकि अगर किसी दिन वे फैब्रिकेटर के यहां न पहुँचें और उस दिन काम आ जाए तो फैब्रिकेटर या सुपरवाइज़र उन्हें हटाकर किसी और कारीगर को काम पर रख लेते हैं। भूख और बुनियादी ज़रूरतें पूरी कर पाने के दबाव ने इन कारीगरों को निहायत अन्यायपूर्ण परिस्थितियों में धकेल दिया है। उदाहरण के लिए एच.एस. फैशनस में कारीगरों को यह तक नहीं पता था कि जो वस्त्र वे बना रहे थे उसके लिए उन्हें किस दर पर मेहनताना दिया जाएगा। पीस दर निर्यातक तय करता है और यहाँ फैब्रिकेटर को इस शर्त पर ऑर्डर मिला था कि वह समय पर मजदूरों से ऑर्डर पूरा करवा लेगा और मजदूर उससे यह नहीं पूछेंगे कि उनको कितना पीस दर मिलेगा। पिछले दस दिनों के काम न मिलने और उससे पहले कई हफ्तों तक बहुत ही कम काम ने मजदूरों को निर्यातक द्वारा तय की गई यह शर्त स्वीकार लेने पर मजबूर कर दिया था। ऐसा कभी कभार नहीं बल्कि अकसर ही होता है।

पीस-दर मेहनताना, कोई सुविधाएं नहीं

कारीगरों को पंद्रह दिनों में पीस-दर के हिसाब से मेहनताना दिया जाता है। कितना पैसा मिलेगा यह तैयार किए गए वस्त्र पर निर्भर करता है। जैसे कि एक लंबा कोट सिलने के लिए कारीगर को औसतन 240-260 रुपये प्रति कोट और 50 से 85 रुपये प्रति स्कर्ट दिए जाते हैं। अलग अलग फैब्रिकेटर में भी पीस-दर में बहुत अंतर हैं। ऐसा अन्य कई कारकों के अलावा कारीगरों की मोल भाव कर पाने की स्थिति पर भी निर्भर करता है। उदाहरण के लिए एक पूरे आकार वाली जैकेट की सिलाई में एक कारीगर को करीब 12 घंटों का समय लगता है, जिसके लिए तुगलकाबाद की अल फ़ैज़ान निर्माण इकाई में कारीगरों को 110 रुपये मिलने थे। जबकि टीम के दौरे के दौरान गाविंदपुरी की संगीता फैशनस में कारीगर दो अलग अलग तरह के लंबे कोट सिल रहे थे जिनके लिए उनको 160 रुपये और 135 रुपये मिलने वाले थे। वहाँ भी ये कारीगर क़रीब 15 दिनों तक काम के बिना रहने के बाद इस ऑर्डर का काम कर रहे थे। शुरूआत में वे एक दिन में एक कोट नहीं सिल पाते हैं परन्तु बाद में वे एक दिन में डेढ़ कोट सिल लेते हैं।

कुछ हफ्तों पहले इसी इकाई के कारीगरों को मिनी स्कर्ट सिलने का ऑर्डर मिला था जिसके लिए उन्हें 70 रुपये प्रति पीस मिला था। पर वे दिन में केवल एक ही स्कर्ट सिल पाते थे। इस तरह से वे कितना पैसा कमा पाएंगे उस में अंतर केवल काम के मिलने या कम या ज़्यादा मिलने पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि यह इस पर भी निर्भर करता है कि काम कैसा है और उसके लिए पीस-दर क्या है। इसके अलावा कारीगरों की क्षमता से भी इस में अंतर आ जाता है क्योंकि कुछ कारीगर जल्दी काम कर लेते हैं और ज़्यादा पीस तैयार कर पाते हैं। जैसा कि पहले बताया गया है इन इकाइयों में मजदूरों को पंद्रह दिनों में एक बार मजदूरी दी जाती है। इकाई में चमड़े को चिपकाने का काम करने वालों (पेस्टरों) को मेहनताना कारीगरों को ही देना पड़ता है। कारीगरों को हर पीस पर जितना पैसा मिलता है उसका 10 प्रतिशत उन्हें पेस्टरों को देना पड़ता है। निर्माता पेस्टरों को अलग से कोई भुगतान नहीं करता। जब भी कोई ऑर्डर आता है तो कारीगर उसे आपस में इस तरह से बांट लेते हैं कि हर कारीगर को कम से कम एक पीस का काम मिल जाए। जो कारीगर पहले काम खतम कर

पीस दर की अर्थव्यवस्था

पीस दर की व्यवस्था केवल भारत के ही चमड़ा उद्योग की विशेषता नहीं है बल्कि यह अधिकांश विकासशील और अविकसित देशों में व्याप्त है। यह व्यवस्था मजदूरों की कीमत पर निर्यातकों के लिए फायदेमंद है। जब एक खरीदार किसी निर्यातक के साथ किसी वस्त्र को बनाने की कीमत पर मोल भाव करता है तो तय की गया माल भाड़े (एफ.ओ.बी.) में निर्यातक द्वारा कच्चे माल, इस्तेमाल होने वाले अन्य सामग्री, मजदूरी (जिसमें स्थाई कर्मचारियों का वेतन और पीस दर के हिसाब से मजदूरों का मेहनताना शामिल होते हैं), आधारभूत ढांचा और पूँजी की लागत और निर्यातक का अपना लाभ शामिल होते हैं। हर तरह के वस्त्र के लिए यह कीमत अलग अलग होती है। चमड़े का खर्च इस कीमत का प्रमुख हिस्सा होता है इसके बाद श्रम, आधारभूत ढांचा, पूँजी और अन्य सामान का नम्बर आता है। तालिका 2 में अलग अलग तरह के वस्त्रों में विभिन्न अवयवों पर होने वाले खर्च का औसत दिया गया है। यह गणना निर्यातकों से बातचीत के आधार पर की गई है।

तालिका 2 - अलग अलग वस्त्रों की लागत

वस्त्र	एफ.ओ.बी. मूल्य (रु)	औसत	खुद्रा मूल्य : विदेशी बाज़ार ($)	खुद्रा मूल्य : (रु.)	कच्चा माल (40 %)	मजदूरी (30%)	अन्य सामान (5%)	पूँजी और आधारभूत ढांचा (10%)	लाभ (15%)
1/4 स्कर्ट	800-1000	900	100	4,500	360	270	45.0	90	135.0
1/2 स्कर्ट	1500-1800	1,250	135	6,075	500	375	62.5	125	187.0
पूरी स्कर्ट	**2300-2500**	**2,400**	**250**	**11,250**	**960**	**720**	**120.0**	**240**	**360.0**
जैकेट	5000-6000	5,500	550	24,750	2,200	1650	275.0	550	825.0
वेस्ट कोट	900-1200	1,050	115	5,175	420	315	52.5	105	157.0
लंबा कोट	6000-6500	6,250	700	31,500	2,500	1875	312.5	625	937.0
पैंट	4500-5200	4,850	535	24,075	1,940	1455	242.5	485	727.5
कमीज़	4000-4500	4,250	450	20,250	1,700	1275	212.5	425	637.5

लेते हैं वे दूसरे पीस पर काम करना शुरू कर देते हैं। अगर ऑर्डर कारीगरों की संख्या से कम है तो वे मिल बांट कर समूहों में काम करते हैं।

कुछ इकाइयों में कारीगरों ने बताया कि दिसम्बर और जनवरी के महीनों में निर्यातकों की ओर से बहुत कम ऑर्डर आते हैं। कारीगरों की ज़िंदगियों में इसका अर्थ है दिनों हफ्तों तक कोई काम और पैसा न मिलना, इससे उनकी असहायता बहुत ही ज़्यादा बढ़ जाती है। परन्तु पिछले 5-6 सालों में काम की उपलब्धि में लगातार कमी आने के कारण अधिक काम और कम काम मिलने वाले समय का यह अंतर मिटता जा रहा है। काम मिल पाने की अनिश्चितता अब लगभग पूरे साल ही बनी रहती है। कारीगरों का कहना था कि इस काम को 'मौसमी' मानने से यह गलत अंदाज़ा लगता है कि साल के किसी ख़ास समय में काफ़ी सारा काम मिलता है।

अगर साल के अलग अलग समय के आमदनी के अंतरों और पीस दर के अंतरों को ध्यान में रख कर गणना की जाए तो चमड़े के वस्त्रों की सिलाई कर रहे कारीगरों की औसतन आमदनी 2000 रुपये से 2500 रुपये प्रति महीना बैठती है। जिसका अर्थ है कि किसी किसी महीने में वे केवल 1000 रुपये या इससे भी कम कमा पाते हैं और किन्हीं अन्य महीनों में 3000 रुपये तक कमा पाते हैं। मजदूरों की आमदनी का अंतर मुख्यतः इस पर निर्भर करता है कि पीस दर क्या है। कई कारीगर 20-25 सालों से यह काम कर रहे है परन्तु आज वे अपनी दस साल से पहले की स्थिति से बेहतर स्थिति में नहीं हैं।

मास्टर दर्जी एकमात्र नियमित कर्मचारी होता है जिसे फैब्रिकेटर से करीब 4000 से 5000 रुपये महीना और इकाई में तैयार हर पीस के लिए कमीशन मिलता है। कुछ इकाइयों में जो कि सीधे सीधे निर्यातकों के नियंत्रण में होती हैं (जैसे कि तुगलकाबाद

निर्यातक मजदूरों को खरीदार के साथ हुए समझौते की तुलना में बहुत कम पैसा देकर अधिक लाभ हासिल कर लेते हैं। उदाहरण के लिए स्कर्ट को लें। इसकी कीमत आजकल 2400 रुपये तय होती है। इस पर होने वाले खर्च में श्रम का हिस्सा है 720 रुपये। इसमें से आधा स्थाई कर्मचारी को दे दिया जाता है और बाकी के 360 रुपये प्रति पीस श्रमिक को मिलने चाहिए। परन्तु चमड़े के कारीगर को इसके लिए करीब 90 से 125 रुपये या 107 रुपये प्रति पीस मिलते हैं। इस तरह से हर पीस पर निर्यातक सीधे सीधे 250 रुपये का लाभ श्रमिकों को कम पैसा देकर कमाता है।

एक कारीगर आमतौर पर एक दिन में 2.5 स्कर्ट बनाता है। अगर हम मान लें कि एक कारीगर को एक महीने में 25 दिन काम मिला हो तो उसकी कमाई होनी चाहिए 900 रुपये प्रतिदिन या फिर 22,500 रुपये प्रति महीना। कम से कम खरीदार और और निर्यातक के बीच हुए समझौते के हिसाब से श्रम का हिस्सा यही है। पर असल में कारीगर की आय का अवयव केवल 6,710 रुपये महीने का ही है। (और असल में तो श्रमिक की महीने की आय इससे भी बहुत ही कम होती है क्योंकि उसे महीने में करीब 10 दिन ही काम मिलता है)। यानी कि निर्यातक जो अतिरिक्त लाभ कमाता है वह 15,781 रुपया महीना है।

तालिका - 3 पीस दर की अर्थव्यवस्था

वस्त्र	मजदूरी (30%)	वस्त्र प्रति कारीग प्रतिदिन	मासिक उत्पादन	मजदूरी पर मासिक खर्च	मासिक खर्च प्रति मजदूर	मजदूर का मासिक हिस्सा (%)	आय (स्थाई कर्मचारी)	निर्यातक का अतिरिक्त फ़ायदा	अतिरिक्त फ़ायदेकी बांट (%)
1/4 स्कर्ट	270.0	4.5	112.5	30,375	5,906	19.4	15,187.50	9,281.25	30.6
1/2 स्कर्ट	375.0	3.5	87.5	32,813	6,563	20.0	16,406.25	9,843.75	30.0
पूरी स्कर्ट	**720.0**	**2.5**	**62.5**	**45,000**	**6,719**	**14.9**	**22,500.0**	**15781.25**	**35.1**
जैकेट	1,650.0	2.5	62.5	103,125	7,813	7.6	51,562.5	43,750.0	42.4
वेस्ट कोट	315.0	4.0	100.0	31,500	6,500	20.6	15,750.0	9250.0	29.4
लंबा कोट	1,875.0	1.0	25.0	46,875	6,250	13.3	23,437.5	17,187.5	36.7
पैंट	1,455.0	2.0	50.0	72,750	5,375	7.4	36,375.0	13,000.0	42.6
कमीज़	1,275.0	2.0	50.0	63,750	5,250	8.2	31,875.0	26,625.0	41.8
औसत	991.88	2.75	68.75	53,273.4	6,296.88	11.8	26,636.72	20,339.8	38.2

स्थित जैनुइन लेदर इकाई जो कि एच.आर.इंटरनेशनल के लिए काम करती है), वहाँ सुपरवाइज़र को निर्यातक से करीब 10,000 रुपये महीने का नियमित वेतन मिलता है और साथ ही हर पीस पर कमीशन भी।

जितनी भी फैब्रिकेटर इकाइयों का दौरा किया गया उनमें से किसी में भी कारीगरों को किसी तरह का कोई नियुक्ति पत्र नहीं मिला हुआ था। हालांकि वे उसी इकाई में उसी फैब्रिकेटर और निर्यातक के लिए 14 सालों से काम कर रहे थे। श्रम विभाग या अन्य सरकारी नियमों से बचने के लिए फैब्रिकेटर इकाइयों को ज़्यादा लंबे समय तक एक जगह पर नहीं चलने दिया जाता और कुछ समय बाद उनकी जगह बदल दी जाती है। बहुत से कारीगर इकाई के दूसरी जगह चले जाने पर भी उसी इकाई में काम करते रहते हैं परन्तु कई अन्य बेहतर आमदनी की उम्मीद में एक से दूसरी इकाई में भी जाते रहते हैं। 20 कारीगरों की एक इकाई में औसतन 5 से 6 कारीगर ही ऐसे होते हैं जो उस इकाई में 5 साल या उससे ज़्यादा समय से काम कर रहे हों। इन इकाइयों के नाम और ठिकाने भी बदलते रहते हैं इसलिए यह पता कर पाना असंभव होता है कि कौन सी इकाई कब शुरू हुई थी।

पीस दर पर मिलने वाले मेहनताने के अलावा कारीगरों को न तो प्रोविडेंड फंड की सुविधा मिलती है और न ही उनका ई.एस. आई. के तहत रजिस्ट्रेशन हुआ होता है। काम क्योंकि बहुत ही अधिक मेहनत का है इसलिए ज़्यादातर फैब्रिकेटर इकाइयों में कारीगरों की उम्र 20 से 40 साल के बीच है। हर इकाई में 20 साल से कम और 40 साल से ज़्यादा उम्र के भी कुछ कारीगर होते

हैं। जांच के दौरान हम केवल एक ही कारीगर से मिल पाए जो लगभग 55 साल के थे। इसके दो कारण हैं, पहला, कि हर तरह के काम में मालिकों की यह कोशिश होती है कि वे 20 से 35 साल के कम उम्र के कारीगरों को ही काम पर रखें क्योंकि इस उम्र में वे कठिन श्रम कर सकते हैं, उनकी उत्पादन क्षमता ज़्यादा होती है और उनसे अधिकतम अतिरिक्त उत्पादन निकाला जा सकता है। दूसरा, चमड़े के वस्त्रों की सिलाई का काम इतना अधिक मेहनत वाला है कि ज़्यादातर कारीगर 40-45 की उम्र तक आते आते काम करते रहने की स्थिति में नहीं रह जाते।

निर्यातकों की अपनी फैब्रिकेटर इकाइयों में काम कर रहे कारीगरों की स्थिति इनसे बिल्कुल ही विपरीत है। हर बड़ा निर्यातक एक 'दिखावटी' इकाई रखता है जिसमें डिज़ाइन बनाने और कटाई का काम होता है और कुछ मशीनें और थोड़े से कारीगर भी रखे जाते हैं। इन इकाइयों में काम के हालात कहीं अधिक बेहतर हैं। यहाँ नवीनतम मशीनें भी लगी होती हैं। कारीगरों को 6000 रुपये महीने दिए जाते हैं और उन्हें पी.एफ. और ई.एस.आई. की सुविधाएं भी मिलती हैं। जो विदेशी खरीदार ऑर्डर देने से पहले काम के हालातों की जांच भी करना चाहते हैं उन्हें ये उत्पादन केन्द्र दिखाए जाते हैं। पर यह तो साफ़ ही है कि निर्यातक का सारा उत्पादन और लाभ उन फैब्रिकेटर इकाइयों से आता है जिनमें सभी बुनियादी नियमों का हर रोज़ खुलेआम उल्लंघन होता है। इस उद्योग में जहाँ 1.25 लाख से ज़्यादा कारीगर काम कर रहे हैं, ज़ाहिर है कि ऐसे में उत्पादन के इस इंतज़ाम से होने वाला आर्थिक लाभ बहुत ही विशालकाय है। यह लाभ कई करोड़ प्रतिमाह तक है।

कारीगरों की पृष्ठभूमि और रहन सहन

फैब्रिकेटर इकाइयों में काम कर रहे अधिकांश कारीगर बिहार, उत्तर प्रदेश, बंगाल और उड़ीसा से दिल्ली में आ कर बसे हैं। पर कुछ कारीगर दिल्ली, राजस्थान और हरियाणा के भी हैं। ज़्यादातर कारीगर चमड़े के वस्त्रों की सिलाई के काम में दर्जी का काम सीखने के बाद और कुछ समये तक वस्त्र निर्यात उद्योग में या निजी रूप से सूती वस्त्रों की सिलाई का काम करने के बाद आए हैं (सूती वस्त्रों की सिलाई के काम को ये कारीगर 'सिविल' काम कहते हैं)। कारीगरों के प्रशिक्षण (ट्रेनिंग) की कोई औपचारिक व्यवस्था नहीं है। जबकि दूसरी ओर डिज़ाइन बनाने वालों आदि की ट्रनिंग के लिए कई जगहें हैं जैसे कि नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ़ फ़ैशन टैकनोलोजी या चैनई का सैंट्रल लेदर रिसर्च इंस्टीट्यूट। ये कारीगर इस काम में आ पाए क्योंकि या तो इनके परिवार के सदस्य या फिर गाँव के दूसरे लोग पहले से इस काम में थे, जो इन्हें प्रशिक्षण देने को तैयार हो गए। इस तरह से एक पूर्णतयः रिश्तेदारी या गाँव या सामुदायिक संपर्क से आया एक ट्रेनी कारीगर पहले एक अनुभवी कारीगर को उसके काम में मदद करता है। उसे सबसे पहले चमड़े के टुकड़ों को जोड़ने का काम दिया जाता है। वह अनुभवी कारीगर के साथ ही बैठता है और कभी कभी तो उसके साथ रहता भी है। अनुभवी कारीगर उसे अपनी मर्जी से खाने आदि के लिए थोड़ा बहुत पैसा दे देता है। प्रशिक्षण की अवधि में, जो कि 6 महीने या एक साल या कभी कभी उससे भी ज़्यादा लंबी हो सकती है, उसे और कहीं से भी पैसा नहीं मिलता है। एक बार वह काम करना सीख जाता है और चमड़े का पूरा वस्त्र बिना कोई गलती किए सिलने के लायक हो जाता है तब वह अपने आप काम करना शुरू कर देता है, कभी कभी किसी दूसरी इकाई में। कुछ कारीगरों ने पेस्टर के रूप में काम शुरू किया था और धीरे धीरे सिलाई का काम में आए। कई एक कारीगर दर्जियों के परिवारों से आते हैं जिन्होंने गाँव में सिलाई का काम सीखा था, इसके बाद वे शहर आए, कपड़े की सिलाई का काम किया और फिर चमड़े की सिलाई के काम में आए क्योंकि इसमें अधिक पैसा कमा पाने की गुंजाइश थी।

2001 के बाद से काम की उपलब्धि में लगातार कमी आई है। इसके दो बड़े कारण हैं : पिछले 3 सालों में चमड़े के वस्त्रों के निर्यात में कमी। परन्तु इससे भी ज़्यादा बड़ा कारण यह है कि यह काम करने वाले कारीगरों की संख्या बढ़ी है। काफ़ी हद तक संभव है कि यह ग्रामीण उत्तर भारत, ख़ासकर उत्तर प्रदेश और बिहार (जहाँ से इनमें से अधिकांश कारीगर आते हैं) में रोजगार के अवसरों में कमी आने के कारण वहाँ से बड़े स्तर पर शहरों की ओर हो रहे पलायन का हिस्सा है।

इसके अलावा निर्यातक और फैब्रिकेटर अपनी इकाइयों में मौजूद मशीनों की संख्या से ज़्यादा कारीगरों को काम पर रख लेते हैं। इस सब के परिणाम स्वरूप हर कारीगर को पूरे महीने के सभी दिनों में काम नहीं मिल पाता। इससे प्रत्येक मजदूर की और मजदूरों की सामूहिक सौदा कर पाने की क्षमता पर प्रतिकूल असर पड़ता है।

उदाहरण के लिए पाँच साल पहले एक मजदूर औसतन 4000 रुपये प्रति महीना कमा लेता था, आज आमदनी कम हो कर 2500 रुपये प्रतिमाह हो गई है (देखें बॉक्स एक कारीगर की ज़िंदगी)। दूसरी ओर जीवन यापन का खर्च बहुत अधिक बढ़ गया है। एक औसत चमड़े का काम करने वाला मजदूर आज कंगाली की हालत में जी रहा है। ज़्यादातर कारीगर ज़िंदा रहने भर के लिए ज़मींदारों या दुकानदारों से ब्याज की ऊँची दरों पर कर्ज़ा लेने को मजबूर हो गए हैं। आमतौर पर किसी फैब्रिकेटर इकाई में काम कर रहे 20-25 कारीगरों में से केवल 7-10 के बीवी बच्चे दिल्ली में साथ में रहते हैं। बाकी को तंगी के कारण परिवारों को गाँव में ही छोड़ देना पड़ा है। जिनके परिवार दिल्ली में हैं वे अपने बच्चों को स्कूलों में भेजते रहने की पूरी कोशिश कर रहे हैं। लेकिन बहुत बार यह मुश्किल को जाता है क्योंकि पूरे घर की ज़िम्मेदारी उन्हीं के कंधों पर टिकी होती है। हांलाकि बीस साल के आसपास के कुछ नौजवान यह काम अपना रहे हैं परन्तु अधिकांश कारीगर चाहते हैं कि उनके बच्चे चमड़ा कारीगर न बनें और कोई और काम अपनाएं। वे बेहद निराशा से कहते हैं कि लगभग 5-6 साल पहले शादी के लिए चमड़ा वस्त्रों के कारीगर को दूल्हे के रूप में बहुत ही ज़्यादा पसंद किया जाता था जबकि आज कोई भी अपनी

लड़की की शादी चमड़ा वस्त्र कारीगर से नहीं करना चाहता। इस उद्योग में महिला मजदूरों की संख्या बहुत कम है और वे मशीन पर काम नहीं करतीं। यूनियन के सदस्यों ने हमें बताया कि कभी कभार मुट्ठी भर महिला मजदूर बटन टांकने का काम करती हैं। उन्हें पीस दर पर मजदूरी दी जाती है। क्योंकि यह काम बहुत फैला हुआ है, इसलिए अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद हम किसी महिला मजदूर से नहीं मिल पाए।

ऐसा लगता है कि क़रीब 50 प्रतिशत चमड़े के वस्त्र बनाने वाले कारीगर मुसलमान हैं परन्तु इस संबंध में कोई निश्चित आंकडे उपलब्ध नहीं हैं। उसके अलावा अधिकांश या तो दलित हैं या फिर पिछड़ी जातियों से। ऐसा शायद इसलिए हो कि ऊँची जातियों के हिन्दुओं में चमड़े के काम को 'अस्वच्छ' माना जाता है और शायद ऐसा इसलिए भी है क्योंकि कई सारे कौशलों में, जिनमें सिलाई भी शामिल है, पुराने समय से ही मुसलमानों की संख्या ज़्यादा रही है। जब कभी सूअर की खाल के वस्त्र बनाने के लिए आते हैं तो यह सांप्रदायिक पहचान खुल कर सामने आती है। फैब्रिकेटर इकाइयों में तब प्लाईवुड की एक दीवार से कमरे के एक हिस्से को अलग कर दिया जाता है और केवल हिन्दु कारीगर उस चमड़े पर काम करते हैं।

बहुत सारे मजदूर संगम विहार में रहते हैं। गोविंदपुरी, तुगलकाबाद और खानपुर अन्य क्षेत्र हैं जहाँ पर ये मजदूर रहते हैं। संगम विहार शहर के दक्षिण पूर्व कोने में स्थित एक काफ़ी फैली हुई बस्ती है। आसपास दक्षिण दिल्ली की कई एक अमीर कॉलोनियों से घिरी हुई यह बस्ती एक भीड़भाड़ वाला इलाका है। यहाँ सड़कों का कोई नामोनिशान नहीं है, सिर्फ टेढ़े मेढ़े, ऊबड़ खाबड़ रास्ते हैं जो कॉलोनी के विभिन्न भागों को जोड़ते हैं। हर सुबह 8 बजे और

एक कारीगर की जिंदगी

रामेश्वर चमड़े के वस्त्रों की सिलाई का काम करता है। उसकी उम्र 30 साल है। वह संगम विहार में एक कमरे में रहता है जिसमें उसके साथ 3 और मजदूर रहते हैं। उसकी पत्नि और बच्चे बिहार के सीवान जिल में उसके पैतृक गाँव में रहते हैं। वहाँ उसके पिता के पास ज़मीन का एक छोटा सा टुकड़ा है। वह कुम्हार जाति से है। उसके बच्चे छोटे हैं और गाँव में स्कूल में पढ़ते हैं। संगम विहार में जहाँ वह रहता है न तो पानी का नल है और न बिजली। उसके कमरे के साथ कोई शौचालय भी नहीं है। ये लोग मकान मालिक को 500 रुपये महीना किराए के रूप में देते हैं। गलियाँ कच्ची और धूल भरी हैं और इनमें नाले भी नहीं हैं। रामेश्वर चमड़े के वस्त्र बनाने की इकाइयों में गोविंदपुरी, तुगलकाबाद, ओखला और खानपुर में पिछले 10 सालों से काम कर रहा है। उसने यह काम अपने जिले के एक कुशल कारीगर से सीखा था, जो कि पहले से ही निर्माण इकाई में काम कर रहा था। रामेश्वर आठवीं तक पढ़ा हुआ है। वह दिल्ली काम की तलाश में आया था। इस काम में आने से पहले उसने कई एक काम किए। उस समय में चमड़े के काम में अच्छा पैसा मिल जाता था। उसे पहले से सिलाई नहीं आती थी और यह काम सीखने में उसे 6 महीने लगे। वह पहले पैसा बचा पाता था और 1000 रुपये महीने घर भेज दिया करता था। उसे लगता है कि पिछले 5 सालों में सभी कुछ बुरे के लिए बदल गया। जिस निर्माण इकाई में वह काम करता है पिछले 2 सालों में उसकी जगह 3 बार बदली जा चुकी है। ऐसा सरकारी निरीक्षण से बचने के लिए किया गया है। उसे आज भी एक पीस बनाने के उतने ही पैसे मिलते हैं जितने कि 10 साल पहले मिलते थे जबकि इन सालों में सभी कुछ कई गुना मंहगा हो चुका है। घर पैसा भेजना तो दूर की बात है उसके लिए इस शहर में अपना गुज़ारा चला पाना ही मुश्किल हो गया है। अपने कई दोस्तों की तरह उसने भी ज़मींदार से कर्ज़ा लिया हुआ है जो वह 10 प्रतिशत ब्याज पर किसी तरह से वापस चुका रहा है। किसी किसी महीने वह केवल 500 रुपये कमाता है और उसके लिए अपना काम चला पाना बेहद ही मुश्किल हो जाता है। काम के लिहाज से अप्रैल से नवंबर तक के महीने कुछ बेहतर होते हैं जब वह करीब 2000 रुपये महीना कमा पाता है। 8 दिन पहले उसकी इकाई को जो ऑर्डर मिला उससे पहले उसे करीब एक महीने कोई काम नहीं मिला था। उसकी उम्र अभी तुलनात्मक रूप से कम है इसलिए उसका स्वास्थ्य अभी ठीक ठाक है। उसका एक साथी महेश जो कि संगम विहार में एक संकरी गली में रहता है उतना भाग्यशाली नहीं है। वह करीब 40 साल का है और उसे लगातार खाँसी रहती है। उसे कमज़ोरी भी लगती है और कई कई दिनों तक वह काम करने की हालत में नहीं होता और इसलिए काम पर नहीं जा पाता। रामेश्वर का कहना है कि उसके कई एक दोस्तों की, जो 40 साल से ऊपर के हैं, आँखें कमज़ोर हो गई हैं और वे ऊँचा सुनने लगे हैं। यह काम बहुत ही मेहनत का है और इससे आँखों पर बहुत अधिक ज़ोर पड़ता है। 10 सालों से मशीन की आवाज़ सुनते सुनते उसकी सुनने की क्षमता पर भी थोड़ा असर हुआ है। रामेश्वर के कई एक कारीगर दोस्तों को सांस की तकलीफ़ें हैं। परन्तु काम से हाथ धो बैठने के डर से वे रोज़ निर्माण इकाई तक जाते हैं, वहाँ बैठ कर इंतज़ार करते हैं, सिगरेट पी कर, तंबाकू चबा कर, बातचीत करते हुए और ताश खेल कर समय काटते हैं। लगभग दो बजे के बाद वे वापस अपने छोटे से 'घर' की ओर चल देते हैं।

वह नहीं चाहता कि उसके सबसे बुरे दुश्मन को भी यह काम और ऐसी जिंदगी मिले। वह बेचैनी से आशा करता है कि उसके बच्चों का जीवन बेहतर होगा।

शाम 7 बजे ये रास्ते सायकिलों पर और पैदल चल रहे मजदूरों से भर जाते हैं जो कि फैक्टरियों या वर्कशापों की ओर जा रहे होते हैं और वहाँ से वापस आ रहे होते हैं। चमड़े और सूती वस्त्रों की बहुत सी इकाइयाँ क्योंकि दक्षिण दिल्ली में हैं इसलिए बहुत से मजदूर संगम विहार में ही रहते हैं। कॉलानी में कोई भी नालियां नहीं हैं और जिन कमरों में ये चमड़ा मजदूर रहते हैं उनमें बिजली या पानी नहीं है। कुछ मजदूर, जैसे कि सीवान बिहार से आए महावीर, अन्य दो मजदूरों के साथ मिलकर एक कमरे में रहते हैं और 400 रुपये किराया देते हैं। महावीर मैट्रिक पास हैं और वे चाहते हैं कि उनके बच्चे पढ़ लिख पाएं और कोई अन्य काम करें। उनके 8 और 5 साल के दो स्कूल में पढ़ रहे बच्चे उनकी पत्नी और माँ बाप के साथ गाँव में रहते हैं। ज़्यादातर कारीगर पैसा बचा कर घर भी भेजने की कोशिश करते हैं परन्तु पीस दर के कम होते जाने और काम मिलने में कमी आने के कारण ऐसा कर पाना उनके लिए बहुत ही मुश्किल होता जा रहा है। फिर वे अपनी ज़रूरतें पूरी करने के लिए कर्ज़ा लेते हैं। कुछ अन्य जैसे कि अलीगढ़ उत्तर प्रदेश से आए सलीमुद्दीन ने धीरे धीरे पैसा इकट्ठा करके यही घर खरीद भी लिए हैं। वे इस घर में अपने भाई के साथ रहते हैं, जो चमड़ा वस्त्र का ही काम करता है। उनकी या उनके भाई की पत्नी बाहर काम नहीं करतीं। वे खुद 2000 रुपये महीने कमाते हैं और उनके लिए पत्नी व चार बच्चे के परिवार को चला पाना खासा मुश्किल पड़ रहा है। सलीमुद्दीन और उनके भाई दोनों को ही खाँसी की शिकायत है और उनकी आँखें भी कमज़ोर हो गई हैं, पर पैसों की तंगी के कारण उनके लिए इलाज करवा पाना बेहद मुश्किल है। भगवान सिंह नाम के एक और मजदूर को भी लगातार खाँसी और कमज़ोरी की शिकायत रहती है और वे अकसर काम पर नहीं जा पाते हैं। उनके पत्नी ने बेहद निराशा से बताया कि कैसे वे लोग चिरकारी कर्ज़ की स्थिति में फंस गए हैं और उनके लिए ज़िंदगी की गाड़ी चला पाना और बच्चों को स्कूल भेजना जारी रख पाना कितना मुश्किल हो रहा है।

3. मजदूरों का संघर्ष

हांलाकि चमड़े के वस्त्र बनाने वालों की कहानी दुःख, निराशा और हताशा की है पर साथ ही यह कहानी संघर्ष की भी है। 1999 से अपनी यूनियन बनाकर मिलजुल कर काम करके वे अपनी ज़िंदगियों को बेहतर बनाने की कोशिश में भी लगे हुए हैं। 'दिल्ली लेदर कारीगर संगठन' (डी.एल.के.एस.) एक उद्योग आधारित यूनियन है जो कि किसी भी राजनैतिक दल के साथ जुड़ी हुई नहीं है। चमड़े के वस्त्र बनाने वाले कारीगरों की यही एकमात्र यूनियन है। हमारे सर्वेक्षण से महसूस होता है कि कम से कम दक्षिण दिल्ली के चमड़े के कारीगरों में से काफ़ी सारे इस यूनियन के समर्थक हैं। और उसके संघर्ष को अपना मानते हैं। उनका अपना अनुभव है कि उनके संगठित संघर्ष की बदौलत बहुत सारी फैब्रिकेटर इकाइयों में आज केवल 8 से 9 घंटे के दैनिक कार्यकाल के बाद शाम के 6 बजे तक काम बंद हो जाता है।

शुरूआती दौर

'अल्टीमेट फैशनमेकर्स' उत्तर भारत के सबसे बड़े चमड़े के वस्त्र निर्यात करने वाले औद्योगिक घरानों में से एक है। इसके दिल्ली में लगभग 22 फैब्रिकेटर इकाइयाँ हैं। सितम्बर 1999 में निर्यातक ने एक ख़ास तरह के वस्त्र की सिलाई के लिए पीस दर में 50 रुपये की कमी की घोषणा की। इस वस्त्र के लिए उस समय तक कारीगरों को 250 रुपये पीस का मेहनताना मिल रहा था। इस इकाई के कारीगरों ने उन अन्य इकाइयों के मजदूरों से बात की जो कि उसी निर्यातक के लिए वस्त्र बनाते थे। अल्टीमेट फैशनमेकर्स की ओखला, गोविंदपुरी, तुगलकाबाद एक्सटेंशन स्थित 15 फैब्रिकेटर इकाइयों के करीब 400 कारीगर 'अल्टीमेट फैशनमेकस कर्मचारी यूनियन' के बैनर तले संगठित हुए। उन्होंने तय किया कि वे उस क्षेत्र में काम कर रहे सभी चमड़ा कारीगरों को साथ लेकर एक सार्वजनिक सभा करेंगे।

30 अक्टूबर को हुई इस सभा में करीब 2500 कारीगर इकट्ठे हुए। किसी को भी उम्मीद नहीं थी कि इतने सारे कारीगर वहाँ आएंगे। पर यह शायद सालों साल के शोषण, दबे हुए गुस्से, अपने अधिकारों के लिए मांग न उठा पाने और चमड़ा कारीगरों के संगठित होने की गंभीर ज़रूरत के कारण संभव हो पाया। उनकी मुख्य मांग थी कि पीस दर में की गई 20 प्रतिशत की कटौती वापस ली जाए, और पीस दर में 10 प्रतिशत की बढ़ोतरी की जाए। उसी समय एक विरोध प्रदर्शन आयोजित किया गया। हज़ारों कारीगर ओखला की सड़कों पर निकल पड़े जैसा पहले कभी नहीं देखा गया था। 16 ट्रकों में दंगा नियंत्रण पुलिस और पुलिस की 30 जीपें, मजदूरों को तितर बितर करने के लिए लगाई गईं। कई सारे मजदूरों को पकड़ कर ओखला थाने ले जाया गया। उन पर शांति भंग करने, संपत्ति को नुकसान पहुँचाने और अतिक्रमण के झूठे आरोप लगाए गए। उन्हें अगली दोपहर को जमानत पर छोड़ा गया।

दर्द, बदहाली और दमन के खिलाफ अपनी आवाज़ उठाने के लिए मजदूरों को एक मंच पर लाने की कोशिशें बहुत ही संघर्ष और दुविधाओं से भरी हुई हैं। संगठित होने के शुरूआती दौर में एक फैब्रिकेटर के गुंड़ों द्वारा एक मजदूर मासूम अली की बुरी तरह से पिटाई की गई जिससे उनका एक पैर टूट गया। परन्तु चमड़ा कारीगरों की तरफ़ से किसी तरह की संगठित कोशिश के अभाव में पुलिस ने इनकी एफ.आई.आर. या बयान दर्ज नहीं किया। इस बीच पूरे चमड़ा वस्त्र उद्योग में काम रुक गया था। मजदूर जगह जगह 50-100 के समूहों में बैठकें कर रहे थे। जिन पाँच लोगों को जमानत पर छोड़ा गया, पुलिस उन्हें जीप में बिठाकर सब ओर घूमी ताकि मजदूरों को यह विश्वास दिलाया जा सके कि उन्हें असल में छोड़ दिया गया है।

समझौते की शुरूआती शर्तें

यह विचित्र सी बात है कि मजदूरों के प्रतिनिधियों और निर्यातकों के बीच सबसे पहला समझौता 4 नवम्बर 1999 ओखला पुलिस स्टेशन में हुआ। उतनी ही चौंका देने वाली बात यह है कि इस समझौते के समय श्रम विभाग का कोई भी व्यक्ति वहाँ मौजूद नहीं था। समझौते में ये शर्त रखी गईं : पीस दर में 20 प्रतिशत की जगह केवल 10 प्रतिशत कम की जाएगी, काम के घंटे सुबह 9 बजे से शाम 6 बजे तक के होंगे, इनके बाद के घंटों में काम करने के लिए मजदूरों को 50 रुपये ज़्यादा दिए जाएंगे, सभी मजदूरों को जॉब कार्ड दिए जाएंगे।

निर्यातकों ने समझौते पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया। परन्तु पहली तीन शर्तें अधिकांश इकाइयों में मान ली गईं। इसके अलावा मजदूरों ने यह मांग भी रखी कि जब उनसे रात भर काम करवाया जाए तो उन्हें 100 रुपये खाने के भत्ते के रूप में दिए जाएं।

यूनियन का ढांचा

डी.एल.के.एस. के गठन की घोषणा औपचारिक रूप से 5 नवम्बर 1999 को की गई। फैब्रिकेटर इकाइयों की संख्या काफ़ी ज़्यादा है और कार्यकारी दल में सभी का प्रतिनिधित्व होना ज़रूरी था इसलिए चुनाव के लिए एक लंबी चौड़ी प्रक्रिया तय की गई। एक ऐसी यूनियन का बनना जो कि किसी भी पार्टी से न जुड़ी हुई हो, बहुत सी इकाइयों का प्रतिनिधित्व करती हो और जिसके मजदूर अलग अलग निर्यातकों के लिए काम कर रहे हों अपने आप में असाधारण बात थी। इसलिए इसके ढांचे पर बात करना ज़रूरी है।

हर एक फैब्रिकेटर इकाई के कारीगरों ने अपना एक अध्यक्ष चुना। हर एक निर्यातक के लिए काम कर रही फैब्रिकेटर इकाइयों के अध्यक्षों के अलग अलग समूह बनाए गए। ऐसे दस समूह बने। हर समूह ने कार्यकारिणी के लिए दो सदस्य चुने। तीन कार्यकर्ता जो कि उस समय चल रहे संघर्ष के दौरान नेताओं के रूप में उभर कर आए थे, यूनियन के अध्यक्ष, जनरल सचिव और खजांची बनाए गए। इस तरह से 23 सदस्यों वाले कार्यकारी दल का गठन हुआ।

शुरूआती महीने यूनियन को रजिस्टर करवाने की कोशिश में गए। रजिस्ट्रार ऑफ़ ट्रेड यूनियनस के अधिकारी बार बार एक ही सवाल पूछते थे : 'क्या आपके सभी मजदूरों के पास अपनी नौकरी का कोई प्रमाण है?' यह बहुत ही अजीब था क्योंकि मालिकों से ऐसे प्रमाण पत्र तो उनके संघर्ष की एक मुख्य मांग थी। मजदूरों को ऐफिडेविट बनवा कर देने पड़े कि वे विभिन्न फैब्रिकेटर इकाइयों में काम कर रहे थे। फाइल ऊपर पहुँचाने के लिए एक क्लर्क ने 1500 रुपयों की मांग की। ऐसा पाया गया कि श्रम विभाग के अधिकारियों द्वारा ऐसी मांग करना बेहद आम है। जिस समय चमड़ा कारीगर अपनी यूनियन का नामांकन करवा पाने की जद्दोजहद में लगे थे, फैब्रिकेटरों ने भी अपना एक संघ बना लिया था दिल्ली लेदर फैब्रीकेटर ऐसोसिएशन (डी.एल.एफ.ए.)।

बायकॉट और तालाबंदी

जनवरी 2000 में दो इकाइयों, तरन इपलैक्स और एस.एन. एंटरप्राइज़िस, में मजदूरों और प्रबंधकों के बीच रस्साकशी तनी। ये दोनों इकाइयाँ बी-70 ओखला औद्योगिक क्षेत्र की थीं। दोनों ही पुनिहानी इंटरनेशनल के लिए चमड़े के वस्त्र बनाती थीं। पुनिहानी इंटरनेशनल भारत के सबसे बड़े निर्यातकों में से है। रजिस्टर, जॉब कार्ड, नियुक्ती पत्र, ओवर टाइम का पैसा, ई.एस.आई और पी.एफ. की मजदूर मांग कर रहे थे। प्रबंधकों ने इसके जवाब में 102 मजदूरों को काम से निकाल कर दिया।

मजदूरों और प्रबंधकों के बीच लगभग 20 दिनों तक बातचीत चलती रही जिसमें कोई भी समझौता होने की कोई उम्मीद नहीं दिखाई दे रही थी। प्रबंधकों ने अपनी इकाइयों को बंद कर दिया ताकि विरोध कर रहे मजदूरों की जगह नए मजदूरों को काम पर रखा जा सके। डी.एल.के.एस. ने तय किया कि वह सभी चमड़ा कारीगरों से यह अपील करेंगे कि वे बी-70 की इन इकाइयों का बायकॉट करें और साथ ही पुनिहानी इंटरनेशनल की सभी इकाइयों में 29 फरवरी की टोकन हड़ताल भी रखी गई। जिस समय यह सब हो रहा था तब एक कारीगर को पुनिहानी इंटरनेशनल की एक इकाई में घुसने से रोका गया जिससे फैब्रिकेटर के साथ झड़प हो गई। पुनिहानी इंटरनेरशनल के दबाव में आकर फैब्रीकेटरस ऐसोसिएशन ने 1 मार्च से क्षेत्र की सभी फैब्रिकेटर इकाइयों को बंद कर दिया जिससे करीब 15,000 कारीगरों के रोज़गार प्रभावित हुए। निर्यातक बार-बार यह दोहराते हैं कि उनका फैब्रिकेटर इकाइयों पर कोई भी नियंत्रण नहीं होता और फैब्रिकेटर इकाइयाँ एकदम स्वतंत्र रूप से काम करती हैं। परन्तु निर्यातकों के दबाव के कारण फैब्रिकेटर इकाइयों के बंद हो जाने की यह घटना कुछ और ही बयान करती है।

इकाइयों का बंद होना असल में एक गैरकानूनी तालाबंदी थी। यूनियन ने सभी बंद फैब्रिकेटर इकाइयों पर यह नोटिस लगा दिए कि जितने दिन इकाइयाँ बंद रही हैं उन दिनों के लिए भी मजदूरी के लिए दावा किया जाएगा। इसके तीन दिन बाद फैब्रिकेटरों ने इकाइयाँ खोल दीं। डी.एल.के.एस. ने मांग रखी कि मजदूरों को न्यूनतम दैनिक मजदूरी के हिसाब से उन दिनों की मजदूरी दी जाए जिन दिनों में ये इकाइयाँ बंद रखी गईं थीं।

इसके बाद चमड़ा कारीगरों ने असिस्टेंट लेबर कमिशनर (ए.एल.सी.) के गिरी नगर, कालकाजी स्थित ऑफिस में 23 दिनों का धरना दिया, जिसमें श्रम विभाग से कार्यवाही करने की मांग की गई। कुछ करने की बजाय श्रम विभाग के अधिकारियों ने इन दिनों में ऑफिस आना ही छोड़ दिया! श्रम विभाग के ऑफिस की जगह पुलिस स्टेशन में मीटिंग रखी गई और इसका कारण ए.एल.सी. ने यह बताया कि फैब्रिकेटर चमड़ा कारीगरों की मौजूदगी में खुद को सुरक्षित महसूस नहीं करते। इस सब के बावजूद भी

निर्यातकों और फैब्रिकेटरों ने मीटिंग में आने से मना कर दिया। इसके बाद तालाबंदी के दिनों का वेतन दिए जाने संबंधित केस कड़कड़डूमा श्रम न्यायालय में दाखिल किया गया और पुनिहानी की बी-70 स्थित फैब्रिकेटर इकाइयों का बायकॉट वापस ले लिया गया। केस बाद में खारिज हो गया क्योंकि कुछ समय पश्चात मजदूर इधर उधर हो गए थे और केस की सुनवाई के लिए नहीं जा पाते थे।

पुनिहानी इंटरनेशनल की बी-70 स्थित दोनों इकाइयाँ बाद में बंद हो गईं और वे कुछ अन्य नामों से दूसरी जगहों पर खुलीं। मजदूरों की एकदम बुनियादी, सही और कानूनी मांगों के जवाब में निर्यातकों और उद्योगपतियों के पूरी तरह से गैरकानूनी रवैये का यह एक और उदाहरण है। कानून के अनुसार जो कुछ उन्हें खुद ही मजदूरों को देना चाहिए उसके बजाय उन्होंने मांगें मानने की जगह अपनी इकाइयों को एक जगह से बंद करके दूसरी जगह पहुँचा दिया और दूसरे कारीगर रख लिए। इस मामले में मजदूरों को काम से निकाले जाने के संबंध में एक केस तब से कड़कड़डूमा कोर्ट में अटका हुआ है।

मांगों में विस्तार

2000 के शुरू में चमड़ा कारीगरों ने नई मांगें रखनी शुरू कीं। जो बात सबसे अधिक ध्यान देने वाली है वह यह है कि ठेका मजदूरी खत्म करने संबंधित एकमात्र राजनैतिक मांग के अलावा मजदूर केवल मौजूदा कानूनों के लागू किए जाने की ही मांग कर रहे थे। उनकी मांगें थीं :

- ठेका मजदूर प्रथा की समाप्ति
- 1 मार्च 2000 में हुई गैरकानूनी तालाबंदी के दिनों की मजदूरी का भुगतान
- ई.एस.आई., पी.एफ., बोनस, ओवर टाइम का भुगतान और संवैधानिक रूप से नियत न्यूनतम मजदूरी को लागू करना
- फैक्टरी एक्ट 1948 की अवमानना कर के स्थापित की गई फैब्रिकेटर इकाइयों का इंस्पैक्शन
- प्रबंधकों द्वारा मजदूरों की मांगों से बचने के लिए किसी भी इकाई को कभी भी मनमाने ढंग से बंद कर देने पर रोक
- श्रम विभाग द्वारा नियमित रूप से फैब्रिकेटर इकाइयों का इंस्पैक्शन ताकि कारीगरों के सेवा रिकार्ड बनें और सही ढंग से रखे जाएं।
- श्रम कानूनों से बचने के लिए निर्यातकों द्वारा फैब्रिकेटर इकाइयाँ लगाने और बंद करने के प्रचलन पर रोक।

30 मार्च 2000 को सैंकड़ों चमड़ा कारीगरों ने अपनी मांगों के समर्थन में दिल्ली विधान सभा की ओर मार्च किया। श्रम मंत्री कृष्णा तीरथ को मांग पत्र दिया गया। कृष्णा तीरथ ने केवल इतना किया कि उन्होंने डिप्टी लेबर कमिशनर (डी.एल.सी.) को बुलवाया और उनसे डी.एल.के.एस. को तुरंत रजिस्टर करने को कहा। इस तरह से अंततः इस दिन यूनियन का रजिस्ट्रेशन हो गया।

अगले दिन सामाजिक कल्याण मंत्री के कमरे में एक बैठक हुई जिसमें श्रम मंत्री, श्रम आयुक्त, श्रम उपायुक्त, डी.एल.के.एस. के सदस्य और डी.एल.एफ.ए. और लेदर एक्सपोर्ट काउनसिल शामिल हुए (जो कि वाणिज्य मंत्रालय के अंतर्गत आता है)। निर्यातकों ने तर्क रखा कि श्रम विवाद के संबंध में उनकी कोई भूमिका नहीं है क्योंकि वे केवल व्यापारी हैं और वे श्रमिकों को काम पर नहीं रखते हैं। श्रम मंत्रालय द्वारा डी.एल.के.एस. को भेजे गए बैठक के ब्यौरे के अनुसार श्रमिकों की 'पहली और प्रमुख' मांग 'उनकी ट्रेड यूनियन को रजिस्टर करने की' थी - मान ली गई है। असलियत यह है कि डी.एल.के.एस. ने जो मांग पत्र दिया था उसमें यूनियन के रजिस्ट्रेशन की मांग थी ही नहीं। बैठक के ब्यौरे में समझौते के निम्नलिखित मुद्दों का जिक्र है।

- 'श्रमिकों और मालिकों' के बीच नौकरी की शर्तों और समझौतों का लिखित रिकार्ड रखा जाएगा, जैसा कि कानून के अनुसार ज़रूरी होता है।
- कानूनी प्रावधानों के अनुसार बोनस और ओवर टाइम का भुगतान होगा।
- श्रम विभाग के अधिकारी कानूनी प्रावधानों जैसे कि न्यूनतम वेतन अधिनियम का क्रियान्वन करवाएंगे।

श्रम विभाग के अधिकारियों ने मजदूरों के प्रतिनिधियों को यह भी आश्वासन दिया कि अगर श्रम कानूनों का उल्लंघन होता है तो वे इसके खिलाफ कार्यवाही करेंगे। बैठक के कार्य विवरण के अनुसार वेतन के बारे में कोई समझौता नहीं हो सका क्योंकि 'फैब्रिकेटर जितना पैसा देने को तैयार थे मजदूर उससे ज़्यादा पैसा मांग रहे थे'। उसमें यह भी कहा गया कि फैब्रिकेटर 'न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अनुसार पीस दर तय करने के लिए तैयार थे'।

यूनियन ने उस समय श्रम मंत्री और मुख्य मंत्री को कई शिकायतें भेजीं कि बैठक का विवरण बैठक में हुए समझौतों से एकदम अलग है। असलियत में बैठक में किसी भी मुख्य मुद्दे पर कोई समझौता नहीं हो पाया था। चमड़ा कारीगरों के लिए वेतन बोर्ड बनाए जाने की मांग बैठक में पहली बार ही उभर कर आई थी।

बोनस के लिए संघर्ष

अक्टूबर 2000 में डी.एल.के.एस. ने तय किया कि वह श्रम विभाग पर फैब्रिकेटरों से मजदूरों को बोनस दिलवाने के लिए दबाव डालेगा। इससे पहले मजदूरों को कभी भी बोनस नहीं दिया गया था। 31 मार्च की बैठक के विवरण में कहा गया था कि श्रम विभाग ऐसा करेगा। ए.एल.सी. ने फैब्रिकेटरों को इस संबंध में चिट्ठी लिखी। फैब्रिकेटरों ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। नवम्बर में मजदूरों ने ए.एल.सी. के दफ्तर के बाहर एक दिन का धरना दिया। पुलिस को बुलाया गया। मजदूरों से कहा गया कि वे जिन इकाइयों में काम कर रहे हैं उन्हीं की सीमाओं में बोनस के लिए लड़ाई करें। मजदूर अपनी इकाइयों में वापस आ गए और वहाँ

उन्होंने अपनी लड़ाई जारी रखी। पुलिस फैब्रिकेटर इकाइयों में भी पहुँच गई और मजदूरों को बाध्य किया कि वे बिना बोनस के अपना वेतन ले लें। एक इकाई में कुछ पुलिस वालों ने मजदूरों की पिटाई भी की। हमला करने वाले चूंकि वर्दी में नहीं थे इसलिए मजदूरों ने उन्हें गुंडे समझा और हमले का जवाब दिया। इसके बाद बहुत सारे पुलिसवाले लाठियाँ लेकर वहाँ पहुँच गए और उन्होंने मजदूरों पर लाठी चार्ज किया। यूनियन के एक कार्यकर्त्ता ए.सी.पी. से मिले और उन्हें स्थिति की जानकारी दी। ए.सी.पी. ने इस कार्यकर्त्ता से कहा कि वे गोविंदपुरी पुलिस चौकी के एक पुलिस वाले के साथ वहाँ जाएं और 'बौखलाए हुए मजदूरों और पुलिस वालों को शांत करने में मदद करें'। पर असल में इस कार्यकर्त्ता को गिरफ्तार कर लिया गया और रात भर हिरासत में रख कर सुबह जमानत पर छोड़ा गया। उस पर हमला करने और धमकी देने से संबंधित धाराएं लगाईं गईं। केस अभी भी चल रहा है। मजदूरों को अंततः कोई बोनस नहीं मिला।

वेतन बोर्ड बनावाने का संघर्ष

डी.एल.के.एस. की एक मांग यह थी कि इस उद्योग में तैयार किए जा रहे विभिन्न वस्त्रों के लिए पीस दर तय करने और समय समय पर उसमें बदलाव लाने के लिए एक वेतन बोर्ड बनाया जाए। डी.एल.के.एस. चाहता था कि इस बोर्ड में डी.एल.के.एस. के प्रतिनिधि, फैब्रिकेटरों और निर्यातकों के प्रतिनिधियों के साथ साथ दिल्ली सरकार के प्रतिनिधि शामिल हों।

21 अगस्त 2001 को निर्यातकों के प्रतिनिधियों, निर्माताओं की ऐसोसिएशन और डी.एल.के.एस. की एक बैठक श्रम आयुक्त के दफ्तर में हुई। इस बैठक में कोई स्पष्ट समझौता नहीं हो पाया परन्तु वेतन बोर्ड बनाए जाने के पहले हुए समझौते को बिना किसी ठोस निर्णय के दोहराया गया। अगले तीन महीनों में डी.एल.के. एस. ने दो बार श्रम आयुक्त को इस बारे में याद दिलाने के लिए चिट्ठियाँ लिखीं। परन्तु उनकी ओर से कोई जवाब नहीं आया।

श्रम मंत्री और श्रम सचिव ने 29 नवम्बर को निर्यातकों और फैब्रिकेटरों के साथ एक बैठक की। कारीगरों को इस बैठक से दूर रखा गया। डी.एल.के.एस. ने 6 फरवरी 2002 को मुख्य मंत्री को एक खत लिखा जिसमें चमड़ा कारीगरों की समस्यों पर श्रम प्रशासन और राज्य सरकार द्वारा कोई ध्यान न दिए जाने की शिकायत की गई थी। इसमें एक बार फिर से वेतन बोर्ड बनाए जाने की मांग की गई। अगल 6-7 महीनों में इस संबंध में याद दिलाने के लिए कई एक चिट्ठियाँ लिखी गईं पर उनका कोई फायदा नहीं हुआ। इन सब चिट्ठियों पर जो कार्यवाही हुई वह सिर्फ इतनी थी कि जिन को भी ये चिट्ठियाँ लिखी गई उन्होंने उन्हें श्रम सचिव तक पहुँचा दिया। मुख्य मंत्री के ऑफिस ने डी.एल.सी. को एक चिट्ठी लिखी जिसमें 'मजदूरों की मांगों पर ध्यान देने' को कहा गया। डी.एल.सी. ने कहा कि वेतन बोर्ड का कोई कानूनी आधार नहीं है और उससे कुछ फायदा नहीं होगा।

23 अक्टूबर 2002 को सैंकड़ों मजदूरों ने विधान सभा के सामने प्रदर्शन किया। श्रम मंत्री दीप चंद बंधु मजदूरों से मिले और उन्होंने मजदूरों को आश्वासन दिया कि क्योंकि श्रम विभाग का कहना है कि मौजूदा कानूनों के अनुसार वेतन बोर्ड बनाए जाने का कोई कानूनी आधार नहीं है, इसलिए वैधानिक स्तर पर बदलाव लाकर इस रुकावट को दूर किया जाएगा। अगले दिन डी.एल.के. एस. के प्रतिनिधि मुख्य मंत्री से मिले और उन्हें एक ज्ञापन दिया। इन सब बैठकों में आश्वासन तो ज़रूर दिए गए पर असल में मजदूरों की मांगों को लेकर कोई ठोस कार्यवाही नहीं हुई। इसमें कोई हैरानी की बात नहीं है। क्योंकि वेतन बोर्ड पूरे उद्योग के लिए बनाया जाता है। इसका अर्थ होगा कि इस उद्योग में कार्यरत सभी मजदूरों को एक समूह के रूप में देखा जाए और इसी रूप में उनके साथ व्यवहार किया जाए।

परन्तु प्रबंधक चाहते हैं कि वे मजदूरों को अलग थलग रख पाएं और उनको मजदूरों या इकाइयों से अलग अलग निपटना पड़े। दूसरा ऐसा करने में राज्य की भूमिका भी बढ़ जाती है जबकि असल में राज्य अपनी भूमिका कम करने की कोशिश में लगा हुआ है। इसलिए यह कोई हैरानी की बात नहीं है कि उद्योग आधारित वेतन बोर्ड़ों की संख्या में लगातार कमी आई है। छठे दशक में ऐसे करीब 30 वेतन बोर्ड थे पर अब इनकी संख्या घट कर दो रह गई है। इनमें से भी केवल एक जो कि पत्रकारों और अखबारों या फिर अखबारों की एजेन्सियों में कार्यरत अन्य कर्मचारियों के लिए है कानूनी वेतन बोर्ड है। चीनी उद्योग के लिए 1985 में बना वेतन बोर्ड कानूनी वेतन बोर्ड नहीं है यानी कि उसके सुझावों को कानूनन् लागू नहीं किया जा सकता।

9 दिसम्बर को श्रम मंत्री और श्रम आयुक्त के साथ एक बैठक हुई। आयुक्त ने फिर यही तर्क दिया कि वेतन बोर्ड़ के गठन के लिए कोई कानूनी आधार नहीं है। उन्होंने कहा कि श्रम प्रशासन के मौजूदा ढांचे के तहत ही समस्याओं का समाधान ढूंढा जाना चाहिए। उन्होंने सलाह दी कि मजदूरों, फैब्रिकेटरों और निर्यातकों के बीच बेहतर तालमेल के लिए प्रशासनिक बोर्ड का गठन किया जाए। जब मजदूरों ने उन्हें पहले किए गए वादे के बारे में याद दिलाया तो उन्होंने कहा कि वेतन बोर्ड बनाए जाने के संबंध में बिल का एक ड्राफ्ट बनाया जाएगा और दिल्ली की विधान सभा में पेश किया जाएगा।

तब से वेतन बोर्ड बनाए जाने से संबंधित ज्ञापन और याद दिलाने के लिए चिट्ठियाँ बार बार विभिन्न अधिकारियों को भेजी जाती रही हैं।

पीस दर के लिए संघर्षः पुलिस व निर्यातकों की मिलीभगत

नई सहस्त्राब्दी के पहले तीन सालों में दिल्ली के चमड़ा कारीगरों का सामना बढ़ते हुए निजीकरण और मुसीबतों से हुआ है। पीस दर करीब 30 प्रतिशत कम हो गई जबकि रहने सहने का खर्च इस बीच बहुत अधिक बढ़ गया है। ज़्यादातर चमड़ा कारीगरों के लिए, जो पहले ही जैसे-तैसे अपनी जिंदगी की गाड़ी चला रहे

एक असम्मिलित इकाई

ऑउटर वियर - अन्य कई एक चमड़े के वस्त्र सिलने की इकाइयों जैसी एक निर्माण इकाई है। तुगलकाबाद एक्सटेंशन में स्थित यह इकाई खासकर पुनिहानी इंटरनेशनल के लिए चमड़े के वस्त्र बनाने का काम करती है। औरों की तुलना में यह थोड़ी बड़ी है, इसमें करीब 50 मशीनें हैं। पर यहाँ की श्रम कार्यप्रणाली थोड़ी विचित्र है। यह एक और तरह से भी अलग है कि यहाँ का एक भी कारीगर डी.एल.के.एस. यूनियन के साथ नहीं जुड़ा हुआ है। इस इकाई का मालिक इश्तियाक खान डी.एल.के.एस. को एक दुश्मन की तरह से देखता है और इश्तियाक खान के भरोसे के सुपरवाइज़र और कारीगरों और यूनियन के सदस्यों के बीच कई बार झगड़े भी हो चुके हैं।

जब पी.यू.डी.आर. का जांच दल इस इकाई में पहुँचा तो इश्तियाक खान ने हमें मजदूरों से बात नहीं करने दी। ऐसा लगा कि वहाँ मशीनों की संख्या की तुलना में कारीगरों की संख्या कम थी। मशीनों की वही चिरपरिचित बहरा कर देने वाली आवाज़ यहाँ भी गूंज रही थी। कारीगर सिर झुका कर लाल रंग के महिलाओं के कोट सिल रहे थे और उनका पूरा ध्यान उसके डिज़ाइन पर था। इश्तियाक ने हमें बताया कि कुछ कारीगर उनके साथ 18 साल से काम कर रहे हैं और कुछ पिछले 2 - 3 सालों में उनके पास आए हैं। साल में करीब 6 महीनों के लायक ही काम होता है। बाकी के समय में वे लोग अन्य निर्माताओं के साथ काम करते हैं। जिस ऑर्डर पर कारीगर काम कर रहे थे वह करीब 4 दिन पहले ही मिला था। इससे पहले के 3 महीनों में इश्तियाक के पास न तो कोई काम था और न ही कोई कारीगर। जब हमारे जांच दल ने कारीगरों से बात करने की इच्छा जताई तो इश्तियाक ने एक कारीगर को बुला भेजा जो कि उनके साथ कई सालों से काम कर रहे हैं। इस कारीगर ने इश्तियाक की सारी बातों में हाँ में हाँ मिलाई और यूनियन और उसके सारे प्रयत्नों को बेकार बताया।

कारीगर ज़्यादातर बिहार उसके अपने गाँव से हैं। जिन कारीगरों को अचानक पैसों की ज़रूरत पड़ जाती है वे इनके पास आ जाते हैं। वे पैसा उधार देकर उन कारीगरों की 'मदद' करते हैं। फिर वे कारीगर उधार का पैसा वापस देने के लिए इनके साथ काम करते हैं। जिस समय कोई ऑर्डर मिल जाता है तब कारीगर पूरे दिन दिन भर काम करते हैं। कभी कभी वे 14 से 16 घंटों तक काम करते हैं ताकि अधिक पीस पूरे कर पाएं और वे अधिक पैसा कमा सकें। इश्तियाक का मानना है कि यूनियन द्वारा काम के घंटे निश्चित (सुबह 9 बजे से शाम 6 बजे तक) करवा देना असल में मजदूरों के लिए नुकसानदेह है। जिस मजदूर से उन्होंने हमारी बात करवाई उनका भी यही कहना था। साथ में उन्होंने यह भी जोड़ कि यूनियन के साथ उनका झगड़ा मुख्यतः इसी मुद्दे पर है। उनका कहना था कि कारीगरों के परिवार यहाँ उनके साथ नहीं रहते हैं। वे शाम को खाली ही होते हैं। वे जब भी काम बंद करना चाहें कर सकते हैं। वे खुद यह महसूस करते हैं कि अगर वे रात को 8 -10 बजे तक या रात भर काम करें तो वे ज़्यादा पीस बना सकते हैं और अधिक पैसा कमा सकते हैं। इश्तियाक उन्हें इकाई के अंदर ज़मीन पर सोने भी देते हैं।

इस तरह से कारीगर अलस में किसी भी लिहाज से आज़ाद नहीं हैं। वे इश्तियाक के गाँव से ही हैं, उनसे लिए हुए कर्ज़ में दबे हैं और कर्ज़ा पूरा करने के लिए वे इश्तियाक की इकाई में काम करते, खाते और सोते हैं यानी की पूरी तरह से उनके साथ बंधे हुए हैं। इश्तियाक उन्हें पी.एफ. या ई.एस.आई की सुविधाएं नहीं देते हैं और इस बात से खासे नाराज़ भी हैं कि सरकार बार बार इनके लिए ज़ोर दे कर उन्हें परेशान करती है। वे इन अधिकारियों को आसानी से खरीद सकते हैं। इस मुद्दे पर यूनियन की दिशा काफ़ी पहले से ही स्पष्ट थी। यूनियन ने उनकी इकाई में काम के हालातों, पी.एफ. और ई.एस.आई. सुविधाएं न दिए जाने, फैक्टरी एक्ट के तहत रजिस्ट्रेशन न किए जाने आदि को लेकर कई बार अधिकारियों से शिकायतें कीं। इन शिकायतों के कारण कई बार उनकी फैक्टरी में इंस्पैक्शन हुए और उन्हें काफ़ी परेशानी भी हुई। इश्तियाक और उनके वफ़ादार मजदूरों के अनुसार इन मजदूरों ने खुद कई बार यूनियन से झगड़े किए हैं। एक बार तो उन्होंने यूनियन वालों को डंडों से मारा क्योंकि वे उन्हें अधिक पैसा नहीं कमाने दे रहे थे। यूनियन के लोग इस बात का खंडन करते हैं। उनके अनुसार उन के साथ लड़ने वाले साधारण मजदूर नहीं थे बल्कि वे इश्तियाके के गुंडे थे। तुगलकाबाद की इस इकाई में मजदूरों को अपने ऊपर निर्भर करने वाली एक नई व्यवस्था का चलन है जिसमें वह केवल उत्पादन करते रहें और नए नए डिज़ाइन और ढंग के निर्यात के लिए चमड़े के कपड़े सिलें।

थे, अब अपना और अपने परिवारों का पेट पालना बेहद मुश्किल हो गया है। वे दिनों तक काम बंद कर दिए जाने की स्थिति, जिसे वे 'ब्रेक दिया है' कहते हैं, का सामना कर रहे हैं। दूसरे श्रम आयोग ने यह सलाह दी थी कि 'जहाँ वेतन पीस दर के हिसाब से दिया जाता है वहाँ मालिक अगर मजदूर को किसी अवधि में काम दिलवा पाने में असमर्थ रहता है तो उसे उस अवधी में तयशुदा समय आधारित मजदूरी का 75 प्रतिशत भुगतान करना चाहिए (वाल्यूम 1 पार्ट 1 पेज 368)। श्रम आयोग के इस मशविरे से मजदूरों के हालातों में कोई सुधार नहीं हुआ है।

किसी भी चमड़ा उद्योग इकाई में समय के हिसाब से वेतन का भुगतान नहीं होता है। इसलिए इस उद्योग में काम करने वालों ने ऐसा मान लिया है कि उन्हें हमेशा पीस दर के हिसाब से ही

वेतन मिलेगा और इसी कारण से उन्होंने कभी भी इसकी मांग नहीं उठाई। हालांकि डी.एल.के.एस. मानता है कि लंबे समय में उन्हें भी समय के हिसाब से वेतन के भुगतान की मांग करनी होगी, पर फिलहाल वे केवल पीस दर को वापस बढ़वाने की मांग पर ही अपना संघर्ष केन्द्रित किए हुए हैं।

डी.एल.के.एस. ने पीस दर में 30 प्रतिशत की कटौती को वापस लिए जाने की मांग रखी। 12 जुलाई 2003 को चमड़ा कारीगरों के साथ एक बैठक के बाद निर्यातक घटी हुई पीस दर में 10 प्रतिशत की बढ़ोतरी करने पर राजी हो गए। परन्तु जब कारीगर अपनी इकाइयों में वापस आए तो उन्होंने पाया कि सबसे बड़े निर्यातकों - पुनिहानी इंटरनेशनल, पाल एंटरप्राइसिस और लेदर टैक ने इस समझौते को लागू करने से मना कर दिया था। इससे मजदूरों और निर्यातकों के बीच फिर से झगड़े की स्थिति बन गई।

बड़े निर्यातकों ने समझौते को मानने से इनकार करने के साथ साथ मजदूरों से निपटने के लिए गुंडों का भी सहारा लिया। इस सब में पुलिस की भी उनके साथ मिली भगत थी। मजदूरों और निर्यातकों के गुंडों के बीच पाल एंटरप्राइज़ में 17 जुलाई 2003 को हुए झगड़े में पुलिस ने न केवल निर्यातकों का साथ दिया बल्कि घटना के समय तिलक मार्ग पुलिस स्टेशान में मौजूद डी. एल.के.एस. के नेताओं के ऊपर आपराधिक मामले भी दर्ज़ किए।

19 जुलाई को जब लगभग 7 हज़ार चमड़ा कारीगर डिस्ट्रिक्ट पार्क ओखला के गोलचक्कर पर डी.एल.के.एस. की एक सार्वजनिक सभा कर रहे थे तो बहुत सारे पुलिस वालों के साथ ए.सी.पी. वहाँ पहुँचे। ए.सी.पी. मंच पर चढ़ गए, उन्होंने माइक खींच लिया और मजदूरों से वापस लौट जाने के लिए कहा। जब मजदूर वहाँ से हटने को तैयार नहीं हुए तो उन्होंने वादा किया कि वे डी.एल.के. एस. के प्रतिनिधियों और निर्यातकों के बीच एक बैठक रखवाएंगे। बैठक के दिन से एक शाम पहले ए.सी.पी. ने निर्यातकों के साथ लंबी बातचीत की। अगली दोपहर ए.सी.पी. का ऑफ़िस एक अजीबोगरीब नाटक का मंच बन गया। निर्यातकों और डी.एल.के. एस. के प्रतिनिधियों के बीच की 'बैठक' में ए.सी.पी. ने निर्यातकों से कहा कि वे जैसे चाहें अपनी इकाइयाँ चला सकते हैं और मजदूरों से 'निपटने' की ज़िम्मेदारी उन्होंने अपने ऊपर ले ली। इस आश्वासन के बाद निर्यातक वहाँ से चले गए और डी.एल.के. एस. के प्रतिनिधियों को 9 बजे तक वहाँ बंद रखा गया और उन्हें धमकी दी गई कि अगर वे अपना संघर्ष जारी रखेंगे तो उन्हें उसके गंभीर परिणाम भुगतने पड़ेंगे।

अगले दिन जब मजदूर अपनी अपनी इकाइयों में पहुँचे तो उन्होंने पाया कि पुलिस वहाँ पहले से ही मौजूद थी। मजदूरों को आठ घंटों से भी ज़्यादा काम करने पर मजबूर किया गया क्योंकि पुलिस उन्हें निकलने से जबरन रोक रही थी। चमड़ा कारीगरों ने 5 अगस्त को ओखला के पार्क में एक सभा आयोजित की जिसमें वे इस नए हमले से जूझने के तरीकों पर विचार करने वाले थे। दिल्ली उच्च न्यायालय के आदेश के बावजूद कि मजदूरों को अपनी इकाइयों के 50 मीटर के दायरे से बाहर इकट्ठा होने और प्रदर्शन करने का अधिकार है, ए.सी.पी. (कालकाजी) और स्थानीय पुलिस ने उन्हें अपनी बैठक करने से रोका। 5 अगस्त की सुबह पुलिस ने डी.एल.के.एस. को बताया कि उन्हें वहाँ सभा करने की इजाज़त नहीं दी गई है। डी.एल.के.एस. को क्योंकि पहले से ही ऐसा अंदेशा था इसलिए उन्होंने गोविंदपुरी में श्रम कल्याण हॉल पहले से ही बुक कर रखा था। परन्तु थोड़ी ही देर में पुलिस डी.एल.के.एस. के नेताओं को गिरफ्तार करने पहुँच गई। जब मजदूर पार्क में पहुँचे तो उन्होंने पाया कि वहाँ पुलिस ने अड्डा जमाया हुआ था। ज़्यादातर मजदूर वापस चले गए पर फिर भी करीब 700 मजदूर भयानक गर्मी में श्रम कल्याण हॉल में इकट्ठा हो गए। वहाँ उन्होंने गोविंदपुरी पुलिस स्टेशन जाकर नौ नेताओं की रिहाई की मांग करने का फैसला किया।

स्थिति से निपटने के लिए कड़ी सुरक्षा व्यवस्था की गई थी करीब 5 बस भर कर सी.आर.पी.एफ़. और हथियार बंद पुलिस आधुनिक हथियारों और आँसू गैस के गोलों समेत मौजूद थी। मजदूर झुकने के लिए तैयार नहीं थे। ए.सी.पी. अंततः गिरफ्तार नेताओं और उनके वकीलों से बातचीत करने के लिए मजबूर हो गए और करीब तीन घंटों बाद इन कार्यकर्ताओं को छोड़ दिया गया।

8 अगस्त को डी.एल.के.एस. को निर्यातकों के एक दल के साथ बातचीत के लिए पुलिस स्टेशन बुलाया गया। एक बार फिर निर्यातकों ने पीस दर बढ़ाने से मना कर दिया और ए.सी.पी. ने उन्हें आश्वासन दिया कि अगर मजदूर उनकी शर्तें नहीं मानें या किसी किस्म की कोई परेशानियाँ खड़ी करें तो पुलिस यह सुनिश्चित करवाएगी कि उनकी इकाइयाँ ठीक से चलती रहें। जब डी.एल.के. एस. ने निर्यातकों के दफ्तरों के बाहर प्रदर्शन करने का निर्णय किया तो एक बार फिर ए.सी.पी. ने उसके प्रतिनिधियों को बुलवाया और उन्हें धमकियाँ दीं। आखिर में केवल 10 मजदूरों को एक टोकन प्रदर्शन करने की अनुमति दी गई।

डी.एल.के.एस. के नेताओं को लगा कि इस तरह के टोकन प्रदर्शन का कोई फ़ायदा नहीं है अतः उन्होंने इसे रद्द कर दिया। इस तरह से निर्यातकों ने पुलिस से अपनी जान पहचान का इस्तेमाल, मजदूरों को जनवादी तरह से अपनी मांग मनवाने के लिए दबाव डाल सकने से रोकने के लिए किया।

पिछले एक साल से डी.एल.के.एस. छोटी छोटी सभाएं करके मजदूरों के बीच जागरूकता बढ़ाने और अपने काम को चलाए रखने में लगा है।

4. निष्कर्ष

दिल्ली के उद्योगों में श्रमिकों की हालत बेहद निराशाजनक है। अधिकांश मजदूरों के पास तो अपनी नौकरी का कोई प्रमाण ही नहीं है - और इसी के चलते वे कई सारे लाभों जैसे उपचार की सुविधाओं, भविष्य निधि और अनुग्रहदान (ग्रेच्युटी) आदि से भी वंचित हो जाते हैं। विभिन्न श्रम कानूनों का पालन होने - जैसे कि न्यूनतम मजदूरी मिलने, केवल आठ घंटे काम लिए जाने, उससे ज़्यादा काम करवाने पर इसे ओवर टाइम मानने और इसके लिए भुगतान होने का तो सवाल ही नहीं पैदा होता। जब भी मजदूर संगठित होकर इन सब मुद्दों के बारे में आवाज़ उठाते हैं या मिल जुल कर कुछ हासिल कर पाने की कोशिश करते हैं तो उन्हें कठोर दमन का सामना करना पड़ता है। श्रम कानूनों के इन सभी तरह के हनन् के संबंध में कभी भी श्रम विभाग किन्हीं भी मालिकों के ऊपर कोई भी कार्यवाही नहीं करता। श्रम विवादों की भूलभुलैया की स्थिति में श्रमिक वर्ग के पूँजीपतियों के सामने टिके रहने की शक्ति की सीमाएं और भी साफ़ तरह से उभर कर आती हैं। जब भी श्रमिक इन हालातों के खिलाफ आवाज़ उठाने की कोशिश करते हैं तो मालिक आसानी से उन्हें दबाने के लिए पुलिस की मदद हासिल कर लेते हैं।

चमड़े के उद्योग में लगे मजदूर इस सब के साथ एक और तरह की परिस्थितियों का सामना करते हैं जिससे मालिकों के समक्ष उनकी स्थिति और भी कमज़ोर पड़ जाती है। इसमें से पहली बात यह है कि वे सुदूर के बाज़ारों के लिए सामान बनाते हैं। जो कारक यह तय करते हैं कि उन्हें काम मिलता रहे, वे उनके नियंत्रण के बाहर होते हैं। सरकारी नीतियाँ, दूसरे देशों की सरकारों की नीतियाँ, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, किसी और देश में श्रमिकों पर हमले, अंतराष्ट्रीय सीमा शुल्क, सब्सिडी और कोटा या उनका हटाया जाना इन सभी से उन्हें मिलने वाले मेहनताने और उनके कौशल व श्रम की उपयोगिता पर असर पड़ता है। जिस कंपनी के लिए माल बन रहा है उससे किसी भी किस्म के संपर्क के अभाव में मिलजुल कर कुछ भी सौदा कर पाने की संभावना और भी कम हो जाती है।

परन्तु इस उद्योग का ढांचा ही कुछ ऐसा है कि मजदूर, भारत में उत्पादन का नियंत्रित करने वाले लोगों के साथ भी मोलभाव करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं। विभिन्न ब्राण्डों व ट्रेड मार्कों के मालिक अपने तैयार माल को अमीर पश्चिमी देशों के ग्राहकों को मंहगे दामों पर बेचते हैं। वे खरीदार घरानों के माध्यम से अपने माल को उपलब्ध कराते हैं। भारत के निर्यातक जो कि बड़े विदेशी खरीदार घरानों से तैयार माल के ठेके हासिल करते हैं खुद अपनी इकाइयों में उत्पादन का काम करने के बजाए छोटे फैब्रिकेटरों को यह काम पुनः ठेके पर दे देते हैं। इससे एक तरफ तो श्रम पर होने वाले खर्च में कमी आती है और दूसरी ओर निरीक्षण के काम की ज़िम्मेवारी से भी बच जाते हैं। इसके बाद ये निर्यातक इसी पुनः ठेके पर काम करवाने को इस तर्क के रूप में इस्तेमाल करते हैं कि वे तो केवल व्यापारी हैं और इसलिए उत्पादन की प्रक्रिया में उठे श्रम विवाद से उनका कोई लेना देना नहीं है। इस तर्क का झूठ इसी तथ्य से साबित हो जाता है कि निर्यातक असल में खुद भी उत्पादन का काम करते हैं क्योंकि ठेके हासिल करने के लिए उनके लिए ऐसा करना ज़रूरी होता है। दूसरी ओर जब वे खरीदार घरानों को किसी चीज़ का कोई दाम बताते हैं तो उसकी गणना में मजदूरों पर होने वाला खर्चा भी शामिल होता है। इसलिए जबकि उनकी खरीदारों को दिखाने के लिए बनी दिखावटी इकाइयों में श्रमिकों को ज़्यादा मजदूरी दी जाती है, दूसरी जगह ठेके पर काम देकर और वहाँ मजदूरों के लिए कम मजदूरी तय करके वे उनका हिस्सा भी हजम कर जाते हैं। दूसरी जगह से ठेके पर काम करवाने में उनकी रुचि साफ़ दिखाई देती है, तभी तो या तो निर्यातक खुद अप्रत्यक्ष रूप से फैब्रिकेटर इकाइयों के मालिक हैं या इनके बनने में सहयोगी होते हैं। उद्योग के इस तरह के ढांचे से मजदूर अलग अलग इकाइयों में बंटे रहते हैं और उनमें से कई एक के कुशल दर्जी होने के बावजूद वे अपने मालिकों के साथ समझौते करने पर मजबूर हो जाते हैं। इसलिए मजदूरी को लेकर किसी भी तरह के असरदार सौदे के लिए ज़रूरी है कि उद्योग के स्तर पर मजदूर एकजुट हो पाएं यह काम अगर हो भी पाए तो इसे चलाए रखना मुश्किल होता है क्योंकि विभिन्न इकाइयों में हालात और भुगतान की दरें आदि अलग अलग होती हैं।

घंटों के अनुसार भुगतान की जगह पीस दर पर मेहनताना दिया जाना चमड़ा वस्त्र उद्योग मजदूरों की स्थिति को और भी कमज़ोर बनाता है। पीस दर के हिसाब से वेतन देश के मजदूरों के एक छोटे हिस्से को ही मिलता है और क्योंकि इसका तय किया जाना अधिक मुश्किल होता है इसलिए कानूनी न्यूनतम मजदूरी इसके अनुसार तय नहीं की जाती है। वस्त्रों के लिए इस तरह न्यूनतम मजदूरी तय करना और भी मुश्किल है क्योंकि वस्त्रों के डिज़ाइन और उनमें लगने वाली मेहनत व समय साधारणतयः निश्चित नहीं रहता।

पीस दर के हिसाब से वेतन मिलने से मजदूरों को तीन तरह से नुकसान होता है। पहला न्यूनतम मजदूरी तय हो पाने के अभाव से जुड़ा है। इसलिए अगर पीस दर से मिली मजदूरी, समय दर के बराबर हो भी जाए, तो यह सामान्यतः लम्बे समय तक चल नहीं सकती। मुद्रा स्फीति की वजह से दोनों ही दरों में कमी आना तय है परन्तु समय दर संबंधित कानून में इसकी पूर्ति का प्रावधान मौजूद है जो कि पीस दर में नहीं है। दूसरा, माल का प्रकार बदलने से हर बार पीस दर के संबंध में पुनः मोलभाव करने की ज़रूरत पड़ती है। हर बार असरदार मोलभाव कर पाना इस पर निर्भर करेगा कि मजदूर किस हद तक संगठित हैं। इन दोनों कारणों से पीस दर व्यवस्था में मजदूरों के लिए एक बार हुए लाभ को बनाए

रख पाना और भी मुश्किल हो जाता है। तीसरा, पीस दर पर वेतन मिलने से काम के घंटों का सवाल एकदम बेमानी हो जाता है। मजदूर काम के घंटे ज़्यादा होने का विरोध नहीं करते क्योंकि उनका वेतन इतना कम होता है कि ज़्यादा देर काम करने से कुछ अधिक कमा पाना संभव हो पाता है। यह मालिकों के लिए अत्यधिक लाभ की स्थिति रहती है क्योंकि मजदूरों को प्रति पीस कम मजदूरी देकर उनकी वास्तविक आय को स्थिर बनाए रखा जा सकता है अर्थात मजदूरी पर खर्च किए गए हर एक रुपये से मालिक को अधिक फायदा होगा। जबकि साधारणतयः इस तरह का मुनाफा बढ़ाना तभी हो सकता है जब फैक्टरी, मशीनों आदि पर और खर्चा किया जाए ताकि मजदूरों की उत्पादन क्षमता बढ़ाई जा सके। परन्तु चमड़ा उद्योग में ऐसा कर पाने की गुंजाइश कम होती है क्योंकि यह श्रम प्रधान उद्योग है जिसमें मजदूरों की संख्या एक हद से ज़्यादा कम नहीं की जा सकती। इस सब से स्पष्ट हो जाता है कि पीस दर से वेतन दिए जाने की स्थिति में श्रम विभाग की अधिक सकारात्मक भूमिका और मजदूरों के अधिक संगठित होने की ज़रूरत रहती है।

चमड़ा वस्त्र उद्योग में बहुत समय तक किसी भी तरह के मजदूर संगठन का अभाव रहा है। उद्योग के कई सारे मालिकों में बंटे होने और हर उत्पादन इकाई में बहुत कम मजदूरों के होने के कारण एक असरदार मजदूर संगठन खड़ा कर पाना आसान भी नहीं था। इस कारण से किसी भी तरह का श्रम विवाद भी नहीं खड़ा होता था और क्योंकि श्रम विभाग अपनी भूमिका सिर्फ श्रम विवादों के खड़े होने की सूरत में देखता है इसलिए विभाग की ओर से सही वेतन या ठीक काम के हालात सुनिश्चित कर पाने की किसी तरह की भी पहल की कमी रहती है। इसलिए डी.एल.के. एस. के रूप में उद्योग आधारित संगठन बनना एक गुणात्मक परिवर्तन है। यूनियन द्वारा विभिन्न सरकारी महकमों पर दबाव डालने से इन महकमों की संवेदनशीलता तो नहीं बढ़ी परन्तु इससे श्रम विवाद में पुलिस को दाखिला मिल गया। पुलिस न केवल इस काम के लिए अनुपयुक्त है और इसलिए इसकी भूमिका गैरकानूनी है बल्कि इसके बीच में पड़ने से मालिकों को यह आश्वासन मिल गया कि मजदूरों को दबा कर उनसे काम लिया जा सकेगा। पुलिस द्वारा यह काम औपचारिक रूप से संभाल लेना और श्रम विभाग को इसमें कोई आपत्ति न होना भविष्य के लिए एक खतरनाक संकेत है।

उपरोक्त जांच के आधार पर पी.यू.डी.आर. मांग करता है किः

- यह सुनिश्चित किया जाए कि चमड़ा वस्त्र उद्योग के मजदूरों को उचित मजदूरी मिले - कम से कम काम के घंटों के आधार पर मिलने वाली मजदूरी यानी कि कानून में तयशुदा न्यूनतम मजदूरी।
- निर्यातक को मजदूरों का प्रमुख नियोक्ता माना जाए और उसे मजदूरों के वेतन, काम के हालातों आदि के बारे में जवाबदेह बनाया जाए।
- श्रम इंस्पैक्टर फैब्रिकेटर इकाइयों का नियमित रूप से इंस्पैक्शन करें ताकि इकाइयों में सुरक्षित और साफ़ काम के हालात, मस्टर रोल बनाया और रखा जाना और मजदूरों को ई.एस.आई. और पी.एफ़ की सुविधाएं मिलना और गलती कर रहे नियोक्ताओं को सजा मिलना सुनिश्चित हो सके।
- श्रम विवादों में पुलिस का दखल, जैसा कि इस उद्योग के संबंध में हो रहा है, तुरंत बंद होना चाहिए। उन पुलिस वालों के खिलाफ़ कार्यवाही होनी चाहिए जिन्होंने पिछले सालों में निर्यातकों और निर्माताओं के लिए मजदूरों के खिलाफ कार्यवाही की है।

पी.यू.डी.आर. के बारे में

पिछले 2 से 3 दशकों के दौरान जनता के नागरिक और जनवादी अधिकारों की रक्षा के लिए नागरिक अधिकार आन्दोलन स्वतंत्र रूप में उभरा है। दिल्ली में पीपल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स (पी.यू.डी.आर.) इसी आन्दोलन का हिस्सा है।

अपने अस्तित्व में आने के ढाई दशकों में पी.यू.डी.आर. ने देश के अलग-अलग इलाकों से समाज के कई हिस्सों के अधिकारों के हनन के मामले उठाए हैं। जीवन, स्वतंत्रता और बराबरी के अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, दमन और उत्पीडन के खिलाफ संघर्ष का अधिकार, और संगठित होने का अधिकार किसी भी न्यायपूर्ण जनवादी राज्य और समाज की बुनियाद होते हैं। इसी समझ से पी.यू.डी. आर. काम करता है।

पी.यू.डी.आर. द्वारा उठाए गए मुद्दों में से कुछ हैंः मज़दूरों के अधिकार, जनजातियों व किसानों के आन्दोलन, वन नीति, विस्थापन, सांप्रदायिक और जातिगत हिन्सा, दलित शोषण, हिरासत में मौत व बलात्कार के मामले, पुलिस गोलीबारी और मुठभेड़ों में मौतें, अलोकतांत्रिक कानून, मृत्युदण्ड, और परिवार और समाज द्वारा महिलाओं के अधिकारों का हनन। इन अधिकारों के हनन के खिलाफ, समाज में इनकी प्राथमिकता स्थापित करने के लिए और इस हनन के शिकार लोगों की मदद के लिए पी.यू.डी.आर. ऐसे मामलों की जांच करता है और मिले तथ्यों से रपट तैयार करता है, अखबारों में प्रकाशित करवाने, पर्चे बांटने और सार्वजनिक सभाओं द्वारा लोगों तक पहुंचाता है, धरने और विरोध प्रदर्शन करता है और कानूनी केस लड़ता है।

पी.यू.डी.आर. एक दिल्ली स्थित छोटा संगठन है जिसके संसाधन काफी सीमित हैं। यह किसी भी राजनैतिक दल से सम्बंधित नहीं है और कार्यकर्त्ता अपना समय स्वैच्छिक रूप से संगठन को देते हैं। संगठन का मानना है कि ऐसे संगठन को वित्तीय रूप से स्वतंत्र होना चाहिए इसलिए किसी भी संस्था से पैसा नहीं लेता। काम के खर्च समर्थकों से छोटी-मोटी सहायता और अपने रपटों की बिक्री से आती है। कार्यकर्त्ताओं की साप्ताहिक बैठकों में मुद्दों, विचारों और सुझावों पर अनौपचारिक माहौल में खुलकर चर्चा होती है जिसमें सब कोई शरीक हो सकते हैं। आप पी.यू.डी.आर. की काम में मदद कर सकते हैं - रपट बेचकर, कार्यक्रमों में शामिल होकर और सबसे बेहतर काम में हाथ बंटाकर।

प्रकाशक : सचिव, पीपल्स यूनियन फॉर डैमोक्रेटिक राइट्स, दिल्ली (पी.यू.डी.आर.)
प्रतियों के लिए : शर्मीला पुरकायस्थ, 5 मिरांडा हाऊस स्टाफ़ क्वाटर्रस, छात्र मार्ग, दिल्ली यूनिवर्सिटी, दिल्ली - 110007
सहयोग राशि : 3 रुपये
मुद्रक : हिन्दुस्तान प्रिंटरस, नवीन शाहदरा, दिल्ली - 110032
ई मेल : pudr@pudr.org और pudrdelhi@yahoo.com